जीवन के विविध आयामों में तरह-तरह के रंग भरने में हरदर्शन सहगल, एक अग्रणी कथाकार हैं। उनके पूर्व कथा-संग्रहों—मौसम, टेढ़े मुँह वाला दिन तथा मर्यादित—की बहुचर्चित कहानियों के सादृश्य इस कथा-संकलन की कहानियों का महत्त्व इस रूप में कुछ अलग और अधिक है कि समृद्ध कला संपन्न व्यंग्य दृष्टि का पैनापन इनमें सहज ही परिलक्षित होता है। और इन रंगों के माध्यम से हमारे सम्मुख जो तस्वीरें उभरकर आती हैं, उन्हें देखकर, हमें अपने पूरे समकालीन समाज का आकलन करने का अवसर मिलता है और साथ ही निराशा के बीच में से झलक उठते हैं प्रकाश के स्वर्ण-कण।



गोल लिफाफे





गोल लिफाफे





हास्य-व्यग्य कथाएँ

प्रिय कमला को
जिसने मेरे हर मजाक को
बहुत सीरियसली लिया।

हरदर्शन सहगल

☆☆☆☆☆☆☆☆☆ नालदा प्रकाशन ☆☆☆☆☆☆☆☆☆
महरौली, नई दिल्ली-110030

क्रम

दास्तान-ए-खम्भा

अभी मैं जयपुर ही में था और किसी सोर्स की तलाश में था। जैसा कि आप सबको अच्छी तरह से मालूम है—यदि आप इसी वर्तमान युग—जिसे हम सब कभी-कभी जल भुनकर कलियुग भी कह बैठते हैं—के प्राणी हैं। कि बिना सोर्स की चोंचें लडाए कोई भी कार्य नही हो सकता।

तभी अचानक एक दिन बडा लडका पालू आ पहुँचा और झटके से बोला—आपने इतने दिन लगा दिए यहाँ। मम्मी फिक्र कर रही हैं।

—पहले काम तो बना लें जिसके लिए यहाँ आया हूँ।

—ओह डैडी। गिरा दिया। वह खुशी और शोखी की लहरों पर इतराता हुआ बोला।

मैं आश्वस्त तो हुआ ही, साथ ही नई पीढी के नौजवान बेटे पालू से प्रभावित भी हो उठा। जो काम बाप से नही हो सका वह पालू ने कर दिखाया। शाबाश बेटे शाबाश। मैं मन ही मन गुनगुना उठा।

—अबे भक्क।

घर पहुँचते ही खम्भे पर नजर पडी तो मैं बेकाबू होकर पालू पर बुरी तरह से चिल्ला पडा। धोखा। इतना बडा धोखा दिया मुझे जयपुर से बुलाने के लिए।

पालू सहमकर मेरे सामने से हट गया। मगर खम्भा तो ज्यों का त्यों खडा है—मुझे मुँह चिढाता हुआ।

हमारे सुन्दर से लगने वाले बँगलो कम मकान के मेन गेट के सामने एक

बिजली का खम्भा गडा हुआ है। आसानी से समझा जा सकता है कि थोड से भी सभ्य से लगनेवाले घर के लिए कितना घिनौना हो सकता है।

अत मैंने बिजली बोर्ड के कार्यालय के अनेक चक्कर काटे थे। अपनी व्यथा अभियन्ता महोदय के सामने रखने के लिए नीचे से होते हुए ऊपर तक पहुँचा—मुख्य अभियन्ता के पास।

बात तो उन्होंने सुन ली किन्तु मुझे लगा जिस प्रकार खम्भे बारम्बार मेरी आँखों को अखरते हैं ठाक उसी भाँति यानी खम्भों की भाँति मैं भी उन अभियन्ता के सामने डटकर बैठा हुआ उनकी आँखों को खटक रहा था। जिस तरह जल्द अज़ जल्द मैं खम्भे को अपने मकान के सामने से हटवाना चाहता था ठीक उसी मानिन्द वे भी मुझे अपने भव्य कार्यक्षेत्र से हटवा देना चाहते थ।

उन्होंने न केवल टेबल पर पडी चमचमाती हुई—लेकिन कर्कश ध्वनि पैदा करती हुई घटी टनटनाई बल्कि मुँह—वह भी पूरा गोलाकार रूप में खोलकर। पुकार लगाई—टेगुआ।

चपडासी ने दुगुनी गति से कमरे में प्रवेश किया—शायद दो चीज़ों के एक साथ बजने के कारण।

—हाँ हुज़ूर।

साहब ने छत की ओर देखा।

—टेगुआ चपडासी ने झट से पखे को फुल वाल्यूम पर ध्वनित कर दिया—खट खट खट खट—

इस खट खट को चीरते हुए टेगुआ का खटखटा जुमला उभरा—हुकम हुज़ूर का।

लेकिन अभियन्ता महोदय मुझसे मुखातिब हुए—आप इस तरह से सीधे हमारे पास कैसे चले आते हैं ?

टेगुआ चपडासी की ओर देखकर मुझे भी उसी प्रकार बोलना पडा—हुज़ूर। हुज़ूर इनसे टेगुआ से। मिलकर आया था।

इस पर उन्होंने टेगुआ को घूरा। चपडासी ने बडी फुर्ती से अपने दोनों हाथ पैंट की जेबों में डाले—निकाले जो किसी विधवा के सिन्दूर वाले स्थान की भाँति पूरी तरह खाली खाली खुरद और खुश्क थे।

—आप। मेरा मतलब है। मुझसे मिलने से पहले कनिष्ठ अभियन्ता से

मिलिए।

—उनका दफ्तर तो हमारे घर के रास्ते में ही पडता है। कई दफा तो उनसे इल्तजा कर ली

—तो क्या कहा उन्होंने बुशर्ट से बाहर निकले अपने काले बालों को अपनी सख्त हथेलियों से रगडते हुए उन्होंने दरयाफ्त किया।

—यही जो मैं कर रहा हूँ। हडबडी में मेरी समझ में नहीं आया कि मैं एकदम स और क्या जवाब दे सकता हूँ।

—क्या मतलब ? उन्होंने एक्सप्लेनेशन तलब की।

तब तक मैं सँभल चुका था। बडी शालीनता से ब्योरेवार समझाया कि पहले तो हाँ हाँ करते रहे और अन्त में आकर आपसे मिलने को कहा। सो हुजूर मिल रहा हूँ आपसे। कि काम हो जाएगा और अब ।

दरअसल वे मुख्य अभियन्ता थे। अस्तु वे समझने की बजाए समझाने में ही विश्वास रखते थे। शानदार रोबीली आवाज थी उनकी—यूँ कीजिए एक एप्लाकेशन लिख दीजिए कि

मैं उनका कीमती वक्त बचाने की गरज से बीच में ही टोक बैठा—दे रखी है।

—अच्छा। वे जैसे किसी हैरत में आ गए। और फिर टेगुआ खम्भों वाली फाइल। समझे' 'बाबू से कहकर मँगाओ। फौरन।

न जाने मुझे इस साधारण से वाक्य में बचपन में देखे गए बादशाह के ड्रामेवाला वाक्य याद आ गया हुक्म की तामील हो।

इसे सौभाग्य न समझने का मेरे पास कोई कारण नही कि बाबू भी फौरन मिल गया और मेरे कागज भी। कभी कभी ग्रह इतने ही महान् प्रबल होते हैं।

वे मेरी एप्लीकेशन ऊँचे स्वर से पढने लगे।

—हमारे घर के दरवाजे के ठीक सामने एक बदसूरत सा भद्दा खम्भा उग आया है। जो व्यक्ति थोडा भी एस्थेटिक सेंस रखता है—आप श्रीमान्, सोच हो सकते हैं कि सुबह, सवेरे शाम ऐसे लम्बूतरे खम्भे को देखकर किसी सुरुचिपूर्ण व्यक्तित्व रखने वाले व्यक्ति के जिगर पर क्या गुजरती होगी।

—मकान की शोभा में कमी आने के कारण—श्रीमती तेजी बच्चनजी ने

भी तो खम्भा हटवाकर गवर्नमेंट का । खैर, यह खबर तो हुजूर पढ ही चुके होंगे।

पर मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ। मेरा इस वाकिआए से कोई सम्बन्ध नही। हमारे इसी खम्भे के कारण विदेशियों यानी हमारे पडोसियों की बिजली की तारें हमारे मकान के ऊपर से बेबाक हवाई जहाज की तरह गुज़रती हैं। आँधियाँ चलने पर जिनसे चिंगारियाँ फूट निकलती हैं जो कानूनन जुर्म है । दीपावली के दिन निकलें तो हमें कोई एतराज़ नही होगा।

उन्होंने पढना रोक दिया और क्रोधायुक्त नेत्रों से मुझे घूरा—खूब पढे लिखे लगते हैं। ऐसे अपील की जाती है—मुख्य अभियन्ता को ? साफ-साफ सक्षेप में अपनी डिफिकल्टी लिखिए। यह क्या मकान की शोभा वोभा लगा रखी है ?

—पहले ऐसी ही लिखी थी सर परन्तु आपसे पहले वाले अभियन्ता महोदय ने ही ऐसी कुछ सलाह दी थी। कहा था बात कुछ जमी नही। थोडे इम्प्रेसिव वे से लिखिए। सर। आप थोडा और कष्ट उठाकर देखेंगे तो बहुत सारी पहलेवाली भी अर्जियाँ मिल जाएँगी। यह तो लेटेस्ट है। सौन्दर्य बोध जैसे शब्द पहले वाले साहब ने ही सुझाए थे। अब वह तो बदल गए। अब आप ही हमारे परिवारवालों के लिए सब कुछ हैं। आप अब आप जैसे कहें लिखवा लें

ओ हो हो शायद मेरी दीनता पर याद हो सकता है, उपर्युक्त शब्दावली से प्रफुल्लित होकर वे पहली बार मेरे सामने हँसे और एक चिट लिख दी—उसी कनिष्ठ अभियन्ता के नाम। बोले मेरा नाम लो। भगवान का नही कहा काम हो जाएगा।

—यह बात तो सर आपसे पहले वाले साहब ने भी कही थी

जैसे ही यह अधूरा सा वाक्य मेरे मुँह से निकला उनके तेवर पहले वाले ऐंगल पर आ गए—उन पहले साहब की बात उन तक खत्म हुई। अब मैं कह रहा हूँ। अगर काम नहा करवाना चाहते तो यह चिट यही छोडते जाइए।

ओह कैसे छोडता इतनी नायाब चीज को। उनकी व्याख्या से मुझे तसल्ली होने लगी थी। क्या पता यह खुल जा सिम सिम जैसी कोई तिलिस्मी ईजाद हो। लिहाजा उनसे मुआफी माँगते हुए पाँच सौ के नए चले

नोट से ज्यादा सँभालकर ले चला।

कनिष्ठ अभियन्ता ने चिट देखते ही मुझे बैठाया—ओह, आपने क्यों कष्ट किया। किसी बच्चे या चपडासी के हाथ ही भिजवा देते।

मैं मन ही मन चिट के करिश्मे की प्रशसा करने लगा।

मुझे अपनी ओर श्रद्धापूर्वक देखते देख उन्होंने गौर किया और उत्साह से अपनी कलाइ घडी पर डेट पढकर मुझे बडी विनम्रता से सारी कहा और जोड देखिए एक गिरे हुए खम्भे को फौरन खडा करवाना है। वह भी सिविल लाइस में। वरना रात भर बत्ती गुल रहेगी और नतीजा समझते हैं—कलेक्टर, एस पी जैसी हस्तियाँ मेरे यहाँ से ऐसी तैसी करवा देंगी। ऐसा करें कल आप स्वय ठीक इसी समय आ जावें।

कइ कई कलों के चक्कर काटने पर एक शुभ या अशुभ मुहूर्त को वे स्वय टकरा गए रूखेपन से पूछा—क्या आपने पैसे जमा करवा दिये?

इस बात का जवाब तो मैं पहले भी भी कई दफा दे चुका हूँ—आप ही को' "शायद मैंने धीरे से जोड दिया।

—क्या? उन्होंने बेमतलब टेलीफोन पर हाथ मारा।

—यही कि आवासन मण्डल को हमने लिखा था। उन्होंने वरिष्ठ अभियन्ता को लिखा था। उन्होंने मुख्य' को। फिर सारे पेपर्ज आपके पास आ गए। मेरे सामने आपके लिपिक ने कागज देखकर कहा था—अब काम हो जाएगा। पैसे आवासन मण्डल देगा। आप तो बेफिक्र हो जाइए।

—हाँ हाँ, याद आ गया केस। मैंने बहुत कोशिश की मगर आप वाले कागज मिल ही नही रहे। आप उनकी डुप्लीकेट कापी ले आवें। इन दिनों तो मेरी खुद की अजीबोगरीब आफ्तों में उलझी हुई है। छोडिए डुप्लीकेट का चक्कर कौन सा आसान है। आप थोडा इन्तजार कीजिए। मुझे ध्यान रहेगा। आप कभी भी बच्चे से रिमाइण्ड करवा देंगे तो बडी कृपा होगी। आप मत आया कीजिए इतने मामूली से काम के लिए।

बीस रिमाइण्डर्स का अजाम। पहले जवाब देते रहे जल्दी करवा देंगे। फिर अभी लेबर नही है, जब होगी भेज देंगे। बार बार आकर सिर मत चाटा करो।

पालू से इस बात को सुनकर मैं निराश हो गया और जयपुर चला गया

कोई सोर्स ढूँढने।

अब जब मैं अब्बे भक्ख कहने के काफी देर बाद थोडा शान्त हुआ तो पालू ने बाद की कथा कुछ इस प्रकार सुनाई—आप तो डैडी जयपुर चले गए। पीछे मम्मी चिन्ता करती रही और मैं कनिष्ठ अभियन्ता के चक्कर लगाता रहा आखिर एक दिन तग आकर मैंने कह दिया तो क्या वापस मुख्य अभियन्ता को कहना पडेगा ?

इस पर वह कनिष्ठ बहुत तैश में आ गया। अकडकर बोला—लो यह रहा फोन और यह रहा उनका फोन नम्बर। मेरे सामने ही कर लो फोन। वह खूसट मेरा क्या कर लेगा ?

यह सारी बातें मैंने जाकर मुख्य अभियन्ता से ज्यों की त्यों कह डाली। इतने में बडे बाबू भी आ गए थे। मेरी सब बातों को बडे ध्यान पूर्वक सुनने के बाद मुख्य अभियन्ता ने बडे गुस्से से हाथ से इशारा भी किया—

वह साला कनिष्ठ अभियन्ता बडा बदमाश है। जब देखो जीप में उडा फिरता है। तुम नौजवान हो। मेरा मतलब तुम्हारे दो चार दोस्त यार तो होंगे ही। तुम सब ही मिलकर गिरा मारो यह खम्भा।

मैं कुछ समझा नही। बाहर आया तो बडे बाबू ने समझाया की यह कनिष्ठ अभियन्ता भी हमारे बडे साहब के लिए खम्भा है। वक्त पर कमीशन तक नही पहुँचाता

एकाएक मेरे ज्ञान चक्षु खुल गए। ताव तो आ ही रहा था उस पर। दोस्तों से मिला। दो बोतलों का इन्तजाम भी किया। पर मुझे तो डर भी लगता था। लिहाजा उन्होंने बोतलें सँभालकर रख ली और मुये जयपुर आपके पास भेज दिया ताकि उस तिथि को मेरी उपस्थिति अलवर की रहे ही नही। अब जाकर पता लगाऊँगा गिराया कि नही वह खम्भा।

—अबे भक्ख्। मैं फिर गुस्से से भडक उठा। खम्भा गिराना नही था शिफ्ट कराना था हम नौकरी पेशा लोग हैं। किसी से मारपीट नही करनी है, समझे।

मेरे बोल सुने अनसुने कर सहमता हुआ पालू मेरी नजरों से कही दूर चला गया है। रह गया है वही खम्भा। मुँह चिढाता हुआ। • •

चेखव क्या चीज है ?

जिस तरफ बँगले ही बँगले हैं, मैं उन्हीं कतारों के बीच से गुजर रहा था। एक बँगले से एक साथ दो युवक दौड लगाते हुए मेरे पास पहुँचे। दोनों ही हाँफ रहे थे। एक बार तो मैंने थोडे डर और हैरानी से उनकी ओर देखा कि शायद दिन दहाडे किसी सकट में फँसे हैं। जो कुछ लगभग एक साथ उन्होंने फरमाया—वास्तव में वह उनके किसी सकट का ही पर्याय था।

"चेखव क्या चीज़ है ?"

मैंने उन्हें घूरा तो उन्होंने एक-दूसरे को घूरा। एक ने कहा—"नही नही चे 'ख' 'व।"

मेरे साथ एक नवयुवक लेखक था। झट से बोल पडा—"क्या इतना भी नही जानते ?"

मैंने मित्र लेखक को रोका और उन्हीं से पूछा—"तुम लोगों को चेखव का क्या करना है ?"

एक बोला—"मनाना है।"

मैं हल्के से मुस्कराया तो दूसरा साथी अपने पहले साथी से बोला—"क्या मनाना मनाना कह रहा है। किसी को नही मनाना। सीधे से कह दे न सेलिब्रेट करना है।"

पहला ज़रा लजाते हुए बोला—"हाँ जी, हाँ जी। ठीक है। मनाते तो रूठे हुए को हैं। ऐसा है कि चेखव साहब की एक सौ तीसवीं या एक सौ पैंतीसवी या कोई बीच की 'क्या कहते हैं उसे हाँ हाँ जयन्ती निकली जा रही है वही मनानी है। मनाना नहीं।"

"कैसे मनाओगे ?" मैंने पूछा।

"अभी पूरी तरह से नहीं कह सकते। शायद कोई डाँस वाँस हो।"

"क्या कोई गोपीकृष्ण सा डाँस करेगा?"

"गोपीकिशन तो पिक्चर आई है।"

उन दोनों के बारी बारी से दिए गए उत्तरों को सुनकर मेरा साथी हँसा। फिर माथे पर हाथ रखकर शायद अपनी खीज उतारने को था कि मैंने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया कि चुप रहे।

"गोपीकिशन में डांस है?" मैंने जिज्ञासु भाव से दोनों को ओर देखा।

"हाँ है।"-दोनों ने तनकर मुँह को ज़रा टेढा बनाते हुए अपना अपना ज्ञान पिटारा खोलना शुरू कर दिया।

मैंने उसी भोलेपन से पूछा—"लम्बी कूद ऊँची कूद यानी लाग जम्प हाई जम्प में कौन माहिर है?"

दोनों ने ही उत्तर दिया—"यह तो हमी दोनों कर लेंगे। जी हाँ जितनी ऊँची और लम्बी कूद वाला हो वही बढ़िया डिस्को कहलाता है।"

मित्र लेखक बोला— अबकी मैं आप दोनों से प्रभावित हुआ हूँ। पहली बार आपने समझदारी की बात की है।"

इस व्यग्य को शायद एक ने भाँप लिया। एक सौ डिग्री का मामूली सा ताव खाते हुए बोला—"छोडो यार सीधे से बताओ चेखव कौन था?"

"चेखव दुनिया भर के सबसे मशहूर लेखकों में स एक हैं। समझे?

"क्या अभी जिन्दा हैं?"

"नही।"

तभी हाँ तभी तो मनानी है एक ने सोचते हुए कहा तो चेखव लिखते थे।

जी हाँ।" लेखक मित्र ने बौखलाकर उत्तर दिया।

"क्या लिखते थे?

"कहानियाँ और छोटे उपन्यास व नाटक।"

हाँ हाँ ठीक फरमाया। हम तो वैसे ही समझ गए थे। जरूर काई बडी चीज रही होगी—चेखव। क्योंकि हमारी इन्टरनेशनल सस्था है। उसे तो बस कोई भी बडा इटरनेशनल फेम का आदमी जँच जाना चाहिए। सर्कुलर निकाल देते हैं। उसी पर कुछ हो जाता है। आप हमारे बारे में जरूर जानते

होंगे। हम लोग पूरी तरह से सास्कृतिक मॉडर्न हैं और उसी सोसाइटी के मेम्बर।"

"जी हाँ।" मैंने गम्भीरता से हामी भरी।

"बस हमने फोन पर चेखव सुना और लेखक सुना। सामने से आप दिखाई दे गए। पिछले दिनों अखबार में आपकी एक दो कहानियाँ देखी थीं ।"

लेखक मित्र फिर बौखलाया—"दो कहानियाँ। इनकी तो दर्जन भर किताबें आ चुकी हैं।"

"हमारे लिए इतना ही काफी है। हम समझ गए आप लेखक हैं। जरूर चेखव को जानते होंगे। हमारा काम बन गया। क्या चेखव साहब की कहानियों के नाम बता सकते हैं?"

लेखक मित्र ने कहा—"जी हाँ, पर आप खुद थोडा कष्ट उठाइए। किसी बडे बुक सेंटर चले जाइए उनकी कुछ किताबें मिल जाएँगी ढग से बैठकर उन्हें पढिए तभी कार्यक्रम हो सकेगा।"

"आप तो उनकी रचनाओं के नाम बता दीजिए। हमारा काम चल जाएगा।"

लेखक मित्र तैश में आ गया। बिना एक शब्द बोले मेरा हाथ खींचा कि यहाँ से चल पडिए। मैंने उसका मान रखते हुए उसके साथ चल दिया।

मैंने ऐसे ही जरा पलटकर देखा इस कल्पना के साथ कि शायद उन छोकरों के चेहरे लटक गए होंगे। मगर नही वे चेहरे मुझे खिले खिल से लगे कि उन्होंने यूँ ही बहुत सी राज की बातें हमसे उगलवा ली हैं।

पाँच रोज बाद सन्ध्या समय मैं अपने उसी नवयुवक मित्र के साथ इस्टीट्यूशनल एरिया से गुजर रहा था कि वही दोनों युवक दिखलाई दिए। सफ़ेद कमीज की जेब पर कपडे का लाल नीला झालरदार बिल्ला टँके हुए।

दोनों ने ही एक दूसरे से बढ चढकर मेरे सामने झुकते हुए कहा—"चलिए। अन्दर चेखव समारोह होनेवाला है। हम आपके घर गए थे, आप मिले नही।"

शायद अप्रत्यक्ष से वे यही कह रहे थे कि आपकी मदद के बगैर हमारा काम चल निकला है।

"कितनी देरी है।" मैंने पूछा।

"बस साहब आप अन्दर चलिए। अँधेरे में लाइटें ज्यादा जोर मारती हैं।" एक ने उत्तर दिया।

दूसरा बोला—"आप चलिए तो। हमें यकीन है आप कतई निराश नहीं होंगे। समय कम था जिस दिन आपसे मिले थे उसी दिन बम्बई युवा संघ शाखा निदेशक का फोन आया था कि जैसे भी हो चेखव को मनाना है। हमने पूछा चेखव क्या चीज है? तो उन्होंने कहा—किसी ढग के लेखक से मिलो। हमारी किस्मत ने जोर मारा। भगवान् ने आपको इधर हमारे पास भेज दिया। बाद में कुछ और लोगों ने भी मदद की।" पहला बोला—"जी हाँ सिर्फ चार पाँच रोज की मेहनत रग लाई है। चलिए अन्दर।"

अन्दर पर्दा उठते ही तालियों की ध्वनि से हर्षोल्लास छा गया। डिस्को यानी खासे कार्यक्रम थे लडके और लडकियों के। लडखडाते हुए साथियों को सँभालते सँभालते एक-दूसरे के निकट जाते और अलग होते ही लाग जम्प हाई जम्प शुरू हो जाती। आसमान फाड़ू साज़ों के बीच अपना अपना गला फाडने की होड शुरू हो जाती—"चेखव चेखव तू महान् *था। तू* साहित्य का ईमान था। तभी तभी तो हम हम हम तुझे पूजते हैं। हम्मा हम्मा तेरे क्या कहने। तूने वार्ड नम्बर छ बनवाया। चेरी की बगिया सजाई ।" स्टेज पर अँधेरा खामोशी। फिर आँखें चुँधियानेवाला उजाला ड्रमों की ढम ढम।

फिर सभी युवक युवतियाँ मतवाली चाल का प्रदर्शन करते हुए एक दूसरे के साथ नृत्य करने लगे।

एकाएक फिर से अँधेरा छा गया।

इससे पूर्व फिर से रोशनी हो फिर लाग जम्प हाई जम्प शुरू हो—मैं किसी तरह अँधेरे में रास्ता बनाता अपने लेखक मित्र के साथ बाहर गया। • •

दूसरा जश्न

भीखम पण्डित बेहोश होकर प्लेटफार्म पर गिर पडा। उसके हाथ में एक भिचा हुआ खत दिखलाई दे रहा था।

ऐसी बात नही कि जो लोग पण्डित की यारी का दम भरते थे, दूर खडे थे या उन्होंने पण्डित को गिरते न देखा हो। बस उनकी प्रतिक्रिया इतनी भर हुई कि उन्होंने अपना समूचा ध्यान उठाकर साहब के चेहरे पर टाँक दिया था।

—मैं जानता था साहब स्टेशन पर जल्दी पहुँच जाएँगे। इसलिए सारा काम छोडकर भागा आया।

—साहब जानते हैं हम सब हमेशा सी ऑफ' करने जरूर आते हैं। सो आपको थोडा जल्दी स्टेशन पर आना पडता है।

—साहब, बँगले पर कोई काम हो तो बताते जाएँ।

—अरे तुम फिक्र मत करो। मैं मम साहब स फोन पर पूछता रहूँगा।

—आपके बिना ऑफिस बिल्कुल ही सूना हो जाता है साहब।

—साहब, साहब साहब

पतले लम्बे धीमे ऊँचे किन्तु गम्भीरता धारण किए हर स्वर का एक विशिष्ट प्रभाव साहब के चेहरे पर पड रहा था।

आँखों की चमक बढ जाती। मुख मण्डल कुछ अधिक खूबसूरत बन जाता। टाई झूमने लगती। गर्दन को हल्का सा झटका देकर पीछे ले जाते तो बहुत बहुत बडे लगने लगते साहब।

थोडे थोडे वक्फे से कोई सिगरेट पेश करता। दूसरा झट से उसे माचिस स जलवाता। कोई पान ला देता। पहले से मुँह चलता देखकर दूसरा पान

उनकी सीट पर रख आता।

—साहब ! आप कब लौटेंगे।

—साहब ! आज तो बहुत से पेपर्स पर आपके साइन होने से रह गए।

—इससे कई बेचारों का काम रुका रहेगा।

—वे थोडी प्रतीक्षा कर लेंगे तो क्या कहर ढा जाएगा उन पर ?

—साहब साहब

—हम सब परसों ग्यारह बजे की गाडी से लौट आएँगे। इतने वाक्यों को सुनने के बाद साहब ने एक वाक्य सुनाया।

—स्टेशन पर हाजिर मिलूँगा।

एक वाक्य के थमते ही दस बारह मुँहों ने नारा लगाया।

—ठीक है। आप लोग अटेन्डेंस की चिन्ता मत करना। साहब के अधिक निकट खडे सुपरवाइजर ने अपने मुँह से सारी फराग दिली उडेलकर रख दी।

गाडी स्टार्ट होने में अभी दस मिनट बाकी थे। सभी यात्री तेजी से अपने अपने डिब्बों की खोज में भागदौड मचा रहे थे।

यात्रियों की ठोकरों से लुढकता हुआ भीखम पण्डित एन साहब के कदमों के बीचों बीच जा फँसा।

—अरे यह क्या है ? हटो। साहब चौंके। सोचा शायद भिखारी है। घृणा से नाक सिकोडते हुए तीन कदम पीछे हटे। उसी फुर्ती से पण्डित रोलर की मानिन्द तीन कदम साहब की तरफ लुढका।

साहब को यह दृश्य प्रेत छाया सा लगा। लेकिन दस बारह लोगों के बीच होने के कारण वे बेहोश नहीं हुए। अपने आपको सँभाला तो पहचान गए।

—अरे यह तो अपना भीखम पण्डित लगता है।

—कहो भई क्या तकलीफ है ?

साहब ने सहानुभूति का अमृत जल छिडका तो भीखम पण्डित के मुँह से साहब निकला। तब वह फुर्ती से उठकर खडा हो गया। लेकिन उसका अगला शब्द सुनने से पहले साहब का घेरा डाले सभी जने बेहोश होकर गिर पडे।

भीखम पण्डित जल्दी जल्दी भावावेश में बोले जा रहा था। शायद किसी को आपके प्रोग्राम का पहले से पता नही था। खैर मैं तो छुट्टी पर था। कइ दिनों से यह सारे बाबू मेरे पीछे पडे थे—लडका हुआ है। पार्टी खिलाओ। तुम्हें चपडासी थोडा समझते हैं। तुम तो हमारे यार हो।

—हूँ, हूँ साहब ने सिर को ऊपर नीचे किया तो भीखम पण्डित का भरभराया स्वर फिर सुनाई देने लगा।

—दफ्तर से छुट्टी ली। सारा दिन इन्तजाम में जाया किया। बढ चढकर पैसा लगाया रौनक में यह लोग आए तो सारे थे, परन्तु रग में भग डालने। अपने आप उतावली से लिफाफों से रसगुल्ले, गुलाबजामुन और बर्फी निकाल निकाल कर गटकने लगे। कडाही में हाथ डाल डालकर हलुआ फाँकते हुए बारी बारी से भागने लगे। किसी ने कहा, पेट बुरी तरह से दुखने लगा है। —किसी ने कहा—पत्नी को ब्लीडिंग होने लगा हैं। एक ने कहा अचानक घर पर मेहमान आ गए हैं।

—हर एक पर एक साथ टूट पडी विपतियों से मैं हक्का-बक्का रह गया। इतनी सारी चाय फैंकनी पडी। मैजिक शो वाले को फोकट में ही पैसे देने पडे। सब का सब बदमजा हो गया साहब।

बिना साहब की मुखाकृति की ओर अधिक ध्यान दिए भीखम पण्डित तेज रफ्तार से जबान दौडाए चला जा रहा था ताकि गाडी दौडने से पहले वह ट्रेजिडी बयान कर दे।

—साहब। मेरी पत्नी एक दम कुढ गई। बोली—इन्ही लोगों की दोस्ती का दम भरते थे। अब जाकर यह चिट्ठी डाल आओ। तान रोज से लिखी पडी है। जाओ जाओ मेरा मुँह क्या देख रहे हो। मैं सारा सामान समेट लूँगी।

—सोचा क्यों न चिट्ठी गाडी में ही पोस्ट कर दूँ। दूर से देखा अपने ही बाबू लोग लगते हैं। लेकिन यकीन नही हुआ कि यह लोग ऐसा भी कर सकते हैं। पुष्टि करने के लिए और नजदीक चला आया। सबको सही सलमत देखकर होश खो बैठा। यहाँ तो दूसरा ही जश्न मनाया जा रहा है—"सी आफ" जश्न

अचानक साहब के खँखारने की आवाज सुनकर भीखम पण्डित को

आवाज अटककर गायब हो गई साहब का चेहरा देखा, पूरी तरह से तमतमाया हुआ था।

उन्हें अपनी तरफ बुरी तरह से घूरते देखकर भीखम पण्डित दुबारा बेहोश होकर गिर पडा।

तभी गाडी चल पडी। साहब लपककर अपने कम्पार्टमेंट में चढ गए।

उन्होंने बाहर झाँक कर देखा—ज्यादातर बेहोशों के हाथ टा टा" की मुद्रा में हिल रहे थे। • •

प्रगति

एक हजार एक सौ एक या इक्यावन गालियाँ खा चुकने के बाद लच्छ नारायन के मुँह से बडी मुश्किल से इतना ही निकल सका "महाराज " उसकी ज़बान डगमगा गई। वह आगे कुछ नही बोल सका।

महाराज ने समझा यानी प्रजा के अन्तर्मन के भावों का अन्दाजा लगाया कि लच्छ नारायन जरूर यही कहना चाहता है कि उसे सिर्फ एक हजार एक सौ एक या इक्यावन गालियाँ ही क्यों दी गई जूते क्यों नही मारे गए।

महाराज ने फौरन हुक्म जारी कर दिया कि लच्छ नारायन को गिन गिन कर एक हज़ार एक सौ इक्यावन जूते लगाए जाएँ। क्योंकि स्वय महाराज मारने की तकलीफ गवारा नही कर सकते थे गालियाँ तो मजे से बैठे बैठ दी जा सकती थी लिहाज़ा उन्होंने दी थी। अब उन्ही की देख रेख में लच्छ नारायन को एक हजार एक सौ एक या इक्यावन जूते मारे गए।

इतने करारे जूते खाने के बाद भी लच्छ नारायन जिन्दा है, यह खबर दूर दूर तक शहर के किनारे लाँघ गई।

शहर के दानिशमन्दा के खयाल के बमूजिब क्योंकि लच्छ नारायन इतनी गालियाँ और जूते एक साथ खा चुकने के बावजूद अभी तक जिन्दा था तो यह इस बात का प्रमाण था कि लच्छ नारायन पक्का ढीठ, वाहियात और निहायत बेहया किस्म का इसान था वरना वह इस वक्त तक जरूर मर चुका होता।

मगर जब राज घराने और इर्द गिर्द के कुछ तमाशबीन तथा आवारा किस्म के छोकरों ने लच्छ नारायन से साक्षात्कार किया तो वे सारे के सारे सहम कर दग रह गये। लच्छ नारायन ने उन्हें बताया वह पूरी तरह से मर

चुका है। दरअसल गालियाँ अभी आधी ही पडी थी तो वह मर चुका था बाकी आधी गालियों का अपव्यय हुआ था। फिर जूतों का उस पर यानी मर हुए आदमी पर क्या असर होता। इस प्रकार जूते मारने से खामखाह राजघराने की शक्ति को भी क्षति पहुँची होगी।

इतनी स्पष्ट आवाज़ में लच्छ नारायन का बोलना और हिलना डुलना और फिर उसके जिस्म पर एक भी चोट के निशान का न होना—सबको चकाचौंध कर गया।

वे सब जने खौफजदा सूरत अख़तियार किए वहाँ से भागे। सीधे महाराज के पास पहुँचे और हाँफते हुए बोले "महाराज आपने अपने महल में भूत को शरण दे रखी है। आपकी तथा आपके परिवार वालों की खैर नहीं ।"

महाराज चौंके "हैं कैसे ?"

फिर उन्हें ब्योरेवार सारे मसले से अवगत कराया गया।

"अच्छा! "महाराज ने क्रोध से अपने होंठ काट लिए " ठीक है तब उसे यानी लच्छ नारायन के भूत को फाँसी चढा दो।"

इसके बाद एक अप्रिय घटना और घटी था। जब जल्लाद लच्छ नारायन को फाँसी चढाने लगा तो लच्छ नारायन ने बडी डरावनी आवाज़ निकाली "अच्छा तुम्हारी यह हिम्मत भूत को फाँसी चढाते हो भय से जल्लाद के हाथ काँप गए और रस्सा टूट गया।

क्या भूत जिन्दा बच गया ? भयमिश्रित उत्सुकता लिए सभी लच्छ नारायन के कटघरे के पास पहुँचे।

लच्छ नारायन ने हँस कर सब की तरफ देखा। और धीरे से बोला "मैं तुम लोगों के सामने दुबारा घोषणा कर रहा हूँ कि मैं वास्तव में मर चुका हूँ। मरे हुए को फाँसी चढाने की जुर्रत को पागल ही कर सकता है।"

लोग फिर भागते भागते महाराज के पास पहुँचे। उन्होंने लच्छ नारायन की कही हुई बात लफ्ज़ ब लफ्ज बयान कर दी।

अब कि महाराज ने बडे ध्यान से समूची स्थिति का जायजा लिया। वे बहुत देर तक सोचते रहे। आखिरकार इस नतीज़े पर पहुँचे कि फाँसी चढाने वाला जल्लाद पागल है। जब वह पागल है तो उसे पहले ही बता देना

चाहिए था। जब उसने अन्धाधुन्ध मेरे हुक्म की तामील की है तो वह पक्का मुजरिम है।

महाराज ने जल्लाद को बुलवाकर एक हजार एक सौ एक या इक्यावन (रीति अनुसार) गालियाँ बकी (नहीं महाराज बहक तो जाते थे, बकते नहीं थे—लिहाजा दीं)। फिर जैसे ही जल्लाद के मुँह से "महाराज" निकला तुरन्त उसे भी एक हजार एक सौ एक या इक्यावन जूते लगाए (नहीं लगवाए) अब लोगों का ध्यान लच्छ नारायन से हट हटकर जल्लाद के पास उड-उड कर जा रहा था। उन्होंने जल्लाद से पूछा, "क्या कारण है इतने जूते एक मुश्त खाने के बाद भी आपको चोट नहीं आई।"

पहले तो जल्लाद उन प्रश्नकर्ताओं को बहुत देर तक घूर घूर कर देखता रहा।

फिर अचानक आसमान फाड़ू अन्दाज में हँसने लगा।

लोगों के बहुत जोर देने पर उसने बताया "वैसे ही पागल को चोट का एहसास नहीं हो सकता पर मैं एक और तरकीब काम में लाया था। यही वजह है कि आप लोगों को आँखें रहते हुए भी मेरे कोई खरोंच तक भी, दिखाई नहीं दे रही"। जैसे ही जूता मेरे नजदीक आकर मेरे जिस्म से टकराता मैं अपना ध्यान उधर से हटाकर जूता मारने वाले पर ले जाता था। इस प्रकार चोट तो जूता मारने वाले को ही लगती"

ऐसी सनसनीखेज खबर को ढो कर, लोगों में महाराज के पास पहुँचने की होड लग गई। जल्लाद (पागल) की बातचीत बीच में अधूरी ही रह गई। जैसे ही महाराज को उक्त सूचना मिली, उन्होंने एक पागल खाने के निर्माण का आदेश जारी कर दिया। (इससे पूर्व राज्य में एक भी पागल खाना नहीं था) और इससे भी पूर्व महाराज अपना कुछ टूटा फूटा महल त्यागकर उसे भूतगृह घोषित कर चुके थे। इन दिनों महाराज भूतों से बहुत डरने लग गये थे तथा उन्हें रात को बहुत डरावने ख्वाब दिखाई देने लगे थे। 'भूत गृह' लच्छ नारायन को अलाट कर दिया गया था। अब महाराज अपने लिए नया चमकीला,महल तैयार करवा कर उसमें विराज रहे थे।

इसके बाद महाराज को कानूनी कार्यवाही करने की याद आई। उन्होंने जल्लाद (पागल) को जूते मारने वाले व्यक्ति का बुलवाया। वह अभी तक-

बुरी तरह से थका हुआ था तथा गहरी नींद सो रहा था। झकझोर कर उठाया गया। 'महाराजाज्ञा सुनते ही वह फुदकता हुआ महाराज के पास जा पहुँचा और हाथ जोडकर खडा हो गया।

महाराज कडक कर बोले 'मैं तुम्हारी सब चालाकी समझता हूँ। अपने हाथ दिखाओ वाकई उसके हाथ बुरी तरह से सूजे हुए थे। फिर उसके कपडे उतरवाकर देखे गये। बारीकी से निरीक्षण करने पर उसके जिस्म पर बहुत ही अस्पष्ट चोटें बरामद की गई। वह अभी बुरी तरह से थका हुआ था और रह रहकर उसे झपकियाँ आ घेरती थी।

अब क्या था महाराज पच्चीस के कोण से सीधे नब्बे डिग्री के कोण पर अकड गये। अबकी स्वय ही जूतों लाठियों और गालियों से उस पर पिल पडे, तूने ढग से फर्ज सर अजाम नही दिये' 'उल्लू के कीडों की औलाद के दामाद। (महाराज की गालियाँ अनुपम विशिष्ट आम लोगों की गालियों से काफी हटकर हुआ करती थी) प्रथा से बढ चढ कर 'यानी एक हजार एक सौ एक या इक्यावन से काफी आगे जाकर दम लिया उन्होंने।

वह गिर पडा और बेहोश हो गया। उसकी चोटें स्पष्ट दिखाई देने लगी थी।

जब इसरे दिन लोग उससे मिले तो वह बुरी तरह से छटपटा रहा था।

लोग महाराज के पास पहुँचे और रहम की अपील की। महाराज का फौलादी जिगर पसीजा। उन्होंने एक सुन्दर सा अस्पताल बनवाने का आर्डर दे मारा। अस्पताल में भरती होने के बावजूद वह बच नही सका और छठे दिन दम तोडकर इस दुनिया से फरार हो गया।

दयालु लोगों ने बडी इज्जत के साथ महाराज को यह खबर दी की, अस्पताल में मरने वाले व्यक्ति के बच्चे दर दर की ठोकरें खाते फिर रहें हैं। और बिल्कुल यही हालत जल्लाद तथा लच्छ नारायन के बच्चों की भी है।

बच्चों की यतीमी की दास्तान सुनते ही महाराज की आँखें एकदम भीग गईं। उनकी जबान से एक शब्द भी नही निकला। आँसू चू चू कर सामने रखी दवात में भरने लगे। महाराज ने कलम उठाई "फौरन एक अनाथालय का निर्माण किया जाए।" लिखकर उन्होंने कागज पर आगे सरका दिया।

जल्लाद पागलखाने से जाने कहाँ गायब हो गया था। अस्पताल भी

खाली पडा था ? भूतगृह में जाने से सभी डरते थे, इसलिए इस बात की कोई गारण्टी नहीं थी कि लच्छ नारायन उस भवन का लाभ उठा रहा है या नहीं।

ऐसी स्थिति में महाराज को नव निर्मित भवनों के खाली पडे रहने का, तथा उपयोग न हो पाने का गम खाने लगा था—वह इस बात का इलाज ढूँढ रहे थे। इन भवनों के लिए 'फिट आदमियों' की खोज जारी करा दी गई।

इधर रियाया बहुत खुश खुश नजर आ रही थी। उन्हें इस बात के प्रमाण मिल गये थे कि उनका राज्य समृद्धिशाली हो रहा है। जिस देश में वह रह रहे हैं, वहाँ भूतगृह, पागलखाना, यतीमघर अस्पताल सब कुछ उपलब्ध हैं। ये विचार उन्हें बराबर पुलकित करते रहते किसी भी सकट की घडी में वे उचित स्थान पर जाकर सरक्षण प्राप्त कर सकते हैं। • •

कुर्सी कथा

—पहले आप!

—पहले आप।

—अजी साहब, नहीं, पहले इनकी हो जाए।

प्रयोग धर्मी साहित्यकारों की एक गोष्ठी में कितनी ही देर तक एक दूसरे को जनरल बनाने की खूबसूरती बिखरती रही। हालांकि सब के अन्दर अपनी अनुपम कृति को सब के बीच जल्द से जल्द उडेल देने की ललक हिलोरें मार रही थी और वाह वाही लूटने को कान बेताब थे। परन्तु कुछ ऐसा था जिसने उन्हें सयत कर रखा था, जिससे वे पहले आप वाली रट लगाए थे।

अन्त में सचमुच ही किसी जनरल जैसे ऊँचे पद वाले अव्वल नम्बर के प्रयोगवादी को सबने घेर लिया—अब और कुछ नही साहब। बस सर्वप्रथम आप।

साहब बिना शीर्षक के रचना आरम्भ करने लगे कहा—छोटी सी एक चीज़ सुनाता हूँ। शीर्षक आप विद्वान सुझाकर मुझ पर अहसान करेंगे।

—अ खाँ साहब ने गला साफ किया, एक बात और आप सबने मुझे पहले रचना पढने का मौका देकर अपने बडप्पन का सबूत पेश किया है परन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है कि जब मेरी रचना खत्म हो जाए तब मुझे मेरी ही रचना पर पहले वक्तव्य जारी करने का अनुरोध नही करेंगे।

साहब के इस वक्तव्य से सबको लगा इतने ऊँचे अधिकारी को प्राथमिकता का अधिकार देकर वे सब उनके और निकट सरक आए हैं।

—ठीक बिल्कुल ठीक साहब। इस तरह के कई शब्द चारों तरफ से बीच में आ गिरे।

एक बार और अ खाँ करके साहब ने सधी हुई ज़बान से रचना पढनी आरम्भ कर दी।

बढते हुए लोगों की नाक में, पीछे की ओर, आग उगलते शोले शोलों में से आग निकलती हुई चिंगारियों के मधुर स्वरों से झूमते हुए सियार और ऊद बिलाव, आपस में झगडते झगडते प्रेमालापों में मशगूल होते ही रोनी सूरतों से ओत प्रोत भूतों से खूँखार आदमी पर सहसा झपटकर हमला बोलते ही बच निकलने के प्रयास में आहत एव तडपन के साजों को मुहब्बत के पुरजोर नगमों से बदनसीबी की पहचान कराने के कारणों के पीछे एक पतले व नाटे जज के बयान का घेराव न कर पाने की कसमें खाते हुए लालच के सदमे चबाते हुए मुलायमियत की फिराक में अपने को खाक कर लेने पर बेजार मानते ही नई पीढी की प्रतिष्ठा को प्रतिपादित करने की फिक्र में फिक्र तौंसवी के जजाल से बचकानी हरकतों के फेर में मुर्दाघरों और पुराने खँडहरों की बकरियों पर कबूतरों के अड्डे कायम करने की कसमसाहट को किसी भी स्तर पर किसी को कबूल करने देने के इरादों से भरकर मगरमच्छों से नन्हें मच्छरों तक के सरक्षण में यात्रा प्रारम्भ कर यात्री जी से अपने पुख्ता दाँतों की रक्षा के सुन्दरतम सच्चे स्वय की गरिमा की हिफाजत में भगोडे आदमियों जमा आदमियों माइनस औरतों के दर्दों दरिन्दों को सूअरों के पेटों में डक झोंकने से पहले उनकी चरबी से स्नान कराने देवताओं के कोठों पर धूप की चिंगारियों की मालाएँ पहनाने की गरजें खाते, मनुहारें गाते, बीती सदियों की सजाओं की सदाएँ सुनाते सुनाते गला फाडकर मुस्कराते गले में से बिम्ब के गोले फँसाते मृत्यु की नमी और नमी पर तरस खाते और अथवा एव नाजायज सम्बन्धों से सराबोर शाश्वत सत्य के प्रतिमानों के मूल्याकन के लिए धर्मनिरपेक्षता की नीति पर कभी भी अमल करने की बजाय घी शक्कर और मलमल के पराँठे से सने मट्ठी के ढेर में से छोटी छोटी मछलियों के कागजी हवाई जहाज और पहलवानों के ठुकराए जाने पर मरे हुओं की मुसीबतों से बेखबर अति भावुकता के चरम बिन्दुओं के लाल बल्बों के ढग के प्रश्न चिह्नों और उन्ही के आशावान दलालों को परीक्षा के सकट कालीन घडियों में अनेक घडियालों की सहायताओं के बिना जिन्दगी न बिता पाने का कहीं भी रास्ता तलाशने का खुशगवार दुपहरियों के मौसम में हाट कोल्ड

टी स्टालों पर अटेंशन् सिटिंग गोष्ठियों में तानाशाहों बनाम प्रजातन्त्रियों की छोटी मोटी नर्मानर्म बहसों की बदहवासी से पहले नोकदार अगों की प्रदर्शनियों में इस्तेमाल पर रोक लगाने के अपराधों में सुल्तानों और उनके परदादाओं और उनकी परदादियों को सही उत्साहवर्धक और शोचनीयता की खोज में जी रहे हम परदेसी राष्ट्रवादी अथवा साहित्यवादी काश्मीर की वादियों के ही लायक हो सकते थे—हैं।

हैं। हैं।

साहब रुक गए तो सबने खुल कर साँस ली—चलो एक वाक्य तो खत्म हुआ। वे अगले वाक्य को पचाने के लिए अपने हाजमे को तैयार करने लगे।

—कहिए क्या राय है ? साहब के यह पूछने पर सब एक क्षण के लिए तो चौंके हैं हैं। फिर उन्हें सुखद अनुभूति हुई। याद आया। साहब ने कहा था। छोटी चीज है। यानी कृति समाप्त हो चुकी है। साथ ही सबको यह भी अहसास हुआ कि चीज़ काफी से ज़्यादी वजनी है। अत वजीर तक इस पर कुछ भी बोलने से गुरेज करने लगे।

कोई घन्टा भर वे सब मौन चिन्तन मग्न रहे—हाँ इस बीच चाय के सुडकने की आवाज से उनके वहाँ होने का इल्म हो जाता था। इसके बाद कोई भी रचना नही पढी गई। पाया यह गया कि साहब वाली रचना कोई मामूली चीज नही बल्कि अमूल्य बारीक शास्त्रीय कला कृति है। सबने सभा विसर्जित होने से पूर्व एक प्रकार की शपथ ली—इसके पैनेपन को पकडने का हम पूरा पूरा प्रयास ईमानदारी करेंगे। इसलिए हमें कलाकृति की मात्र चार चार प्रतियों के साथ ढाई दर्जन दिनों की मुहलत दी जाए।

फौरन ही एक चपडासी हाज़िर हुआ। कलाकृति को साइक्लोस्टाइल करवाने का आर्डर ठोक दिया गया।

खाली हुए चाय के प्यालों पर मक्खियाँ भिनभिना रही थी। • •

ड्रम

"पुरानी चप्पलें जूते रद्दी "

मैं पलग पर सिरहाने की टेक लिए कुछ लिखने की सोच रहा था। इस आवाज़ के साथ ही मैंने पत्नी के कदमों की आहट को भी महसूस किया। शायद इसी आवाज़ को सुनकर वह आँगन से बरामदे तक आ पहुँची थी। तभी गली में दुबारा आवाज गूँज उठी।

"बोतलें, टीन, रद्दी दे दो।"

अब पत्नी दरवाजे तक पहुँच चुकी थी।

"क्यों भय्या ड्रम भी लोगे?"

"हाँ हाँ, दिखा दीजिए।"

"विनय, जरा आँगन से ड्रम तो ले आना।"

विनय बडे जोश से ड्रम को घसीटता हुआ ले आया।

मैं थोडी सी खिडकी खोलकर तमाशा देखने लगा था।

रद्दी वाला ड्रम का निरीक्षण कर रहा था।

"बोलो—क्या दोगे?"

"आपका माल है आप ही बताइए।" रद्दी वाला ड्रम से दृष्टि हटाता हुआ लापरवाही से बोला।

"हम तुम्हारे हिसाब किताब क्या जानें। जो ठीक हो जल्दी से बता दो।" पत्नी ने व्यस्तता प्रकट करते हुए कहा।

"डेढ रुपया दे देंगे।"

"हैं" पत्नी बुरी तरह से चौंकी। वह जैसे मोहभग की स्थिति में बडबडाने लगी "हराम का माल समझ रखा है क्या? इतना बडा ड्रम "

"बीबीजी, चीज़ भी तो देखिए। इसमें अब रखा ही क्या है।"
रद्दी वाला पत्नी की बात को बीच में काटता हुआ बोला।
"दस रुपए देने हों तो ।"
पत्नी का वाक्य अभी पूरा नही हुआ था कि सविता जाने कहाँ से खेलती हुई वहाँ आ पहुँची और शोर मचाने लगी, "नही मम्मी, नही इसे क्यों बेच रही हो। अपन कितनी मुश्किल से लाए थे।"
अपनी दीदी के समर्थन में पिंकू भी मुट्ठी तानकर रद्दी वाले से भिड़ने लगा "भागो हम तो सौ रुपए में भी नही देंगे यह ड्रम।"
"अच्छा बाबा न सही, कहते हुए रद्दी वाला उठ खड़ा हुआ और चलने का नाटक करने लगा "हम तो दो रुपए से ज्यादा नही दे सकते।"
मैंने पिंकू को इशारे से अपने पास बुलाया और उसकी पीठ पर प्यार से थपकी देते हुए बोला "भई क्या हो गया तुम्हें उस वक्त रात को प्लेटफार्म पर तुम लोग ही इसे ड्रम को फेंक देने के लिए कह रहे थे। क्या यह अब बहुत अच्छा लगने लगा?"
पिंकू चुप रह गया। शायद उसके पास कोई तर्कयुक्त उत्तर नही था।
परन्तु सविता जो पिंकू के पीछे पीछे मेरे पास चली आई थी कहने लगी, "डैडी उस वक्त की बात और थी। उस वक्त तो विनय भी यही कह रहा था कि इस ड्रम के टुकड़े टुकड़े करके फेंक दो। लेकिन यह भूखा और भोंदू लड़का है। आज मम्मी के साथ मिलकर इसे बिकवा रहा है। शायद बाद में इन पैसों में से मम्मी से चार आने ऐंठ ले—इसी लालच में।"
बाहर पत्नी और रद्दी वाले के मोल भाव करने की आवाजें निरन्तर आ रही थी। मैंने उधर से ध्यान हटाकर बच्चों से प्रश्न किया—"क्या यह ड्रम अब तुम लोगों को बहुत सुन्दर लगने लगा है पड़े पड़े?"
"नही तो" दोनों ही बच्चों ने नकारात्मक उत्तर में अपने भोले चेहरे दाएँ बाएँ हिला दिए।
फिर मम्मी को टोक क्यों रहे हो। बेचने दो।"
"हाय कितनी मुश्किल से लाए थे इसे।" सविता ने अफसोसजदा आवाज से आह भरी।
पत्नी बराबर रद्दी वाले से भाव ताव में सलग्न थी। इतने में विनय भी

हमारे बीच आ उपस्थित हुआ, "देखिए डैडी। यह भाई कितना खराब है। इतने बडे ड्रम के सिर्फ दो रुपए देना चाह रहा है। मम्मी ने आंटी से पूरे पन्द्रह का लिया था।"

अच्छे बच्चे बडों के मामलों में नही उलझते। तुम्हारी मम्मी को नया चमकीला ड्रम ला ही दिया है। अब इस गन्दे ड्रम का क्या करना। तुम लोग बाहर जाकर खेलो। तुम्हारी मम्मी आप निपट लेगी।"

मेरे कहने का बच्चों पर अनुकूल प्रभाव पडा। थोडी देर पहले बारिश पडने के कारण मौसम खासा अच्छा हो गया था। ये सब चले गए तो मैं दुबारा लिखने का यत्न करने लगा। लेकिन चार महीने पहले की घटना मेरे मन मस्तिष्क पर इस कदर हावी होने लगी कि कुछ लिखा ही नही जा रहा था। उधर बाहर पत्नी और रद्दी वाले की आवाज़ें भी बराबर अपना स्तर कायम रखे हुए थी।

चार महीने पहले जब हम लोग छुट्टियाँ बिताकर हापुड से रवाना होने लगे तो पत्नी को जाने क्या सूझी कि 15 रुपये देकर अपनी बहन से पतले टीन का परन्तु बडे आकार का ड्रम खरीद लाई। ड्रम में उसने लटरम शटरम सामान जैसे जूते तराजू के बाट दालें मैले कपडे भर डाला। इस बात का पता मुझे तब चला, जब एक के बजाय दो रिक्शा वाले दरवाज़े के सामने बुलवाए गए। उन्होंने ड्रम को देखते ही दुगुने पैसे माँग लिए। मैंने पत्नी से ड्रम को वही छोड देने की सलाह दी तो उसने मुँह फुला दिया। रिश्तेदारों ने परिस्थिति की नज़ाकत को परखते हुए पत्नी के पक्ष में वोट डाल दिए "अब तो नग तैयार हो ही चुका है—किसी तरह पहुँच ही जाएगा।"

ड्रम किसी तरह दिल्ली तक तो पहुँच ही गया। परन्तु उसके बाद ड्रम के रतनगढ तक पहुँचने की गाथा बडी मार्मिक, हृदयस्पर्शी एव कारुणिक है। मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि इसी पृष्ठभूमि के आधार पर बच्चों के आतरिक मन में ड्रम को बेचने पर विरोध पैदा हो रहा है।

दिल्ली गाडी से उतरते ही कुलियों ने हमारा सामान देखा। सामान तो शायद नही देखा, देखा तो बडा ड्रम ही देखा। और झट से दस रुपए माँग लिए।

मारे गुस्से के मेरे मुँह से यही निकला 'क्या तुम लोग अपनी कम्प्लेंट

करवाना चाहते हो?"

"कर दीजिए बाबूजी कम्प्लेंट" लम्बी सी आवाज निकालता हुआ एक कुली बोला "मजदूर आदमी हैं पता है, बीकानेर मेल 13 नम्बर प्लेटफारम से छूटेगी।

मैंने उसे क्रोधपूर्वक देखा। तो दूसरा कुली बोला "चलिए आठ रुपए दे दीजिएगा। इससे कम तो बिल्कुल न होंगे।"

"तुम लोग चलते फिरते नजर आओ।" गुस्सा मैं कुलियों पर प्रकट कर रहा था। परन्तु वास्तव में मेरे गुस्से का केन्द्र पत्नी थी। और किसी सीमा तक मैं स्वय जो पत्नी की फ़िजूल और बेहूदी जिद के सामने झुक गया था।

कुली अब भी हमारे आस पास मँडरा रहे थे और हमारी बेबसी का लुत्फ उठा रहे थे, जिनके पास कई छोटे छोटे नग थे और था एक बडा ड्रम जो सितारों में चाँद के समान चमक रहा था।

"जो माँगते हैं दे दीजिए ना। इन लोगों से क्या जिद " पत्नी मेरे निकट आकर फुसफुसा रही थी।

मैं अन्दर तक बेतरह खीज उठा। लगा मुझे कुलियों से नहीं अपितु पत्नी से ही ज़िद हो गई है। परन्तु प्रत्यक्ष में क्रोध कुलियों पर व्यक्त किया—

"ये लोग अपने आपको समझते क्या हैं। कहते हुए मैंने पूरे आकार से हाथों को खोला। जोर लगाकर ड्रम को उठाया और अपने सिर पर रख लिया। इस कार्य में पत्नी को भी योगदान देना पडा।

"नही डैडी नही। सविता का स्वर खासा रुआँसा निकला। जैसे उसके डैडी ने ड्रम न उठाया हो बल्कि तेज रफ्तार से आती हुई गाडी के सामने लाइनों के बीच कूदने वाल हों।

"दिल करता है ड्रम को चूर चूर कर दूँ।"

"मेरा बस चले तो ड्रम के टुकडे टुकडे करके बिखेर दूँ।"

दोनों भाई इस दृश्य से बौखला गए थे। उन्हें यह दृश्य उनके डैडी को उनके पद और स्तर से गिरा देने वाला लग रहा था।

किसी की प्रतिक्रिया की तरफ ध्यान देने का अब मेरे लिए सवाल ही पैदा नही होता था। पत्नी को बाकी सामान के पास खडे रहने की हिदायत देकर चलने लगा। सविता और विनय भी एक-एक अटैची और थैले उठाकर मेरे

पीछे चलने लगे। मैंने अपने से कहा— इसमें हेय क्या है ! अपना काम खुद करने में आखिर क्या बुराई है। विदेशों में भी लोग अपना सामान स्वय उठाते हैं (इस बात को भूलकर कि उनके पास किस किस्म का सामान होता है।)

थोडा और आगे बढने पर जब मुझे पुल पर चढना पडा तो मैं हाँफने लगा था। तब मुझे यह अहसास हुआ कि विदेशों में लोग अपना सामान उठाते हैं। जबकि हम अपना सामान ढो रहे थे। दो तीन बार तो मैंने ड्रम को और साथ ही अपने आपको बुरी तरह से गिरने से बचाया कि सोचकर शुक्र करता हूँ। इस दीर्घ यात्रा के दौरान मुझमें यह डर भी बराबर बना रहा कि किसी जान पहचान वाले मित्र से सामना न हो जाए।

पुल क नीचे उतरते उतरते मेरी हिम्मत जवाब दे गई थी। किसी की सहायता से ड्रम को नीचे उतरवाया। बच्चों को सामान के पास खडा किया और पत्नी को लेने भागा। मैं बुरी तरह से कन्फ्यूज्ड हो गया था। याद नही आ रहा था कि पत्नी को कौन से प्लेटफार्म पर छोडकर आया था। अन्दाजा लगाया, प्लेटफार्म नम्बर तीन था। धन्यवाद प्रभु का अन्दाजा ठीक निकला। दूर से देखा पत्नी छोटी बच्ची को और बडे ट्रक को घसीटते हुए बढी आ रही है। अब हमने जैसे दौड लगा दी थी क्योंकि बीकानेर मेल छूटने में अधिक समय शेष नही बचा था।

पुल के नीचे मीटर गेज प्लेटफार्म के सिरे से हमने छ रुपए में कुली किया। अब मुचे प्लेटफार्म नम्बर 3 और 13 की वास्तविक दूरी का अहसास हुआ।

कई यात्रियों से झगडा कर कुली की सहायता से गाडी में चढे। तभी गाडी चल पडी।

इसी ड्रम के मारे बाद में टी० टी० आई० से भी मिन्नत समाजत करनी पडी थी वह इसे बलकी अर्टिकल की सज्ञा देता था। घर में आते ही पत्नी ने इसे खोला तो जग लगे ढक्कन से उसका हाथ लहूलुहान हो गया। पट्टी तो उसने घर पर बाँध ली परन्तु ए० टी० एस० के इन्जेक्शन के लिए मैंने उसे अस्पताल भेजा था।

शायद यह चौथा या पाँचवाँ ही दिन था कि पत्नी ने कामिनी बहन को कोसना शुरू कर दिया था—"उसने तो मुझे ठग लिया। यह ड्रम बडा जर्जर

करवाना चाहते हो ?"

"कर दीजिए बाबूजी कम्प्लेंट" लम्बी सी आवाज निकालता हुआ एक कुली बोला "मजदूर आदमी हैं पता है बीकानेर मेल 13 नम्बर प्लेटफारम से छूटेगी।

मैंने उसे क्रोधपूर्वक देखा। तो दूसरा कुली बोला "चलिए आठ रुपए दे दीजिएगा। इससे कम तो बिल्कुल न होंगे।"

"तुम लोग चलते फिरते नजर आओ। गुस्सा मैं कुलियों पर प्रकट कर रहा था। परन्तु वास्तव में मेरे गुस्से का केन्द्र पत्नी थी। और किसी सीमा तक मैं स्वय जो पत्नी की फ़िजूल और बेहूदी जिद के सामने झुक गया था।

कुली अब भी हमारे आस पास मँडरा रहे थे और हमारी बेबसी का लुत्फ उठा रहे थे जिनके पास कई छोटे छोटे नग थे और था एक बडा ड्रम जो सितारों में चाँद के समान चमक रहा था।

"जो माँगते है दे दीजिए ना! इन लोगों से क्या जिद " पत्नी मेरे निकट आकर फुसफुसा रही थी।

मैं अन्दर तक बेतरह खीज उठा। लगा मुझे कुलियों से नही अपितु पत्नी से ही जिद हो गई है। परन्तु प्रत्यक्ष में क्रोध कुलियों पर व्यक्त किया—

"ये लोग अपने आपको समझते क्या हैं।" कहते हुए मैंने पूरे आकार से हाथों को खोला। जोर लगाकर ड्रम को उठाया और अपने सिर पर रख लिया। इस कार्य में पत्नी को भी योगदान देना पडा।

"नही डैडी नही! सविता का स्वर खासा रुआँसा निकला। जैसे उसके डैडी ने ड्रम न उठाया हो बल्कि तेज रफ्तार से आती हुई गाडी के सामने लाइनों के बीच कूदने वाले हों।

"दिल करता है ड्रम को चूर चूर कर दूँ।"

"मेरा बस चले तो ड्रम के टुकडे टुकडे करके बिखेर दूँ।"

दोनों भाई इस दृश्य से बौखला गए थे। उन्हें यह दृश्य उनके डैडी को उनके पद और स्तर से गिरा देने वाला लग रहा था।

किसी की प्रतिक्रिया की तरफ ध्यान देने का अब मेरे लिए सवाल ही पैदा नहीं होता था। पत्नी को बाकी सामान के पास खडे रहने की हिदायत देकर चलने लगा। सविता और विनय भी एक एक अटैची और थैले उठाकर मेरे

पीछे चलने लगे। मैंने अपने से कहा—'इसमें हेय क्या है। अपना काम खुद करने में आखिर क्या बुराई है। विदेशों में भी लोग अपना सामान स्वय उठाते हैं (इस बात को भूलकर कि उनके पास किस किस्म का सामान होता है।)

थोडा और आगे बढने पर जब मुझे पुल पर चढना पडा तो मैं हाँफने लगा था। तब मुझे यह अहसास हुआ कि विदेशों में लोग अपना सामान उठाते हैं। जबकि हम अपना सामान ढो रहे थे। दो तीन बार तो मैंने ड्रम को और साथ ही अपने आपको बुरी तरह से गिरने से बचाया कि सोचकर शुक्र करता हूँ। इस दाघ यात्रा के दौरान मुझमें यह डर भी बराबर बना रहा कि किसी जान पहचान वाले मित्र से सामना न हो जाए।

पुल के नीचे उतरते उतरते मेरी हिम्मत जवाब दे गई थी। किसी की सहायता से ड्रम को नीचे उतरवाया। बच्चों को सामान के पास खडा किया और पत्नी को लेने भागा। मैं बुरी तरह से कन्फ्यूज्ड हो गया था। याद नही आ रहा था कि पत्नी को कौन से प्लेटफार्म पर छोडकर आया था। अन्दाजा लगाया प्लेटफार्म नम्बर तीन था। धन्यवाद प्रभु का अन्दाजा ठीक निकला। दूर से देखा पत्नी छोटी बच्ची को और बडे ट्रक को घसीटते हुए बढी आ रही है। अब हमने जैसे दौड लगा दी थी क्योंकि बीकानेर मेल छूटने में अधिक समय शेष नही बचा था।

पुल के नीचे मीटर गेज प्लेटफार्म के सिरे से हमने छ रुपए में कुली किया। अब मुये प्लेटफार्म नम्बर 3 और 13 की वास्तविक दूरी का अहसास हुआ।

कई यात्रियों से झगडा कर कुली की सहायता से गाडी में चढे। तभी गाडी चल पडी।

इसी ड्रम के मारे बाद में टी० टी० आई० से भी मिन्नत समाजत करनी पडी थी वह इसे बलकी आर्टिकल की संज्ञा देता था। घर में आते ही पत्नी ने इसे खोला तो जग लगे ढक्कन से उसका हाथ लहूलुहान हो गया। पट्टी तो उसने घर पर बाँध ली परन्तु ए० टी० एस० के इन्जेक्शन के लिए मैंने उसे अस्पताल भेजा था।

शायद यह चौथा या पाँचवाँ ही दिन था कि पत्नी ने कामिनी बहन को कोसना शुरू कर दिया था—"उसने तो मुये ठग लिया। यह ड्रम बडा जजर

है पर बहुत पतला हो रहा है। इसमें भला कोई आटा रखा जा सकता है। रोगन वाले से पता कराया तो पूरे बारह रुपए माँग रहा है।"

पत्नी का गम कम करने के लिए मैं बाज़ार से सताइस रुपए का नया ड्रम ले आया था। पुराना ड्रम उसने आँगन में डाल दिया था, जिसमें वह कभी कभार कोयले या कण्डे डाल देती थी। फर्श धोते समय रोज भीग जाता था—एक तरह से उपेक्षित पडा था वह ड्रम।

मेरा ध्यान टूटा—अबकी शायद बाहर की चुप्पी के कारण। मैंने खिडकी से झाँका। रद्दी वाला जा चुका था। बाहर फिर से हल्की हल्की धूप छा रही थी।

तभी पत्नी कमरे में प्रविष्ट हुई। मेरे सामने मुट्ठी खोलते हुए बोली "दे दिया पौने तीन रुपए में। जान छूटी। यह भी नहीं मिलते अच्छा हुआ भाई की निगाह नही पडी वरना नीचे तले पर बारीक बारीक छेद होने शुरू हो गए थे।

मैं उत्तर में कुछ नही बोला बस थोडा मुस्कराया। दोनों हाथों को सिर से ऊपर ले गया। ड्रम उठाने की मुद्रा में उठ खडा हुआ।

पत्नी मेरा व्यग्य समझ गई। मुस्कराई परन्तु तुरन्त कृत्रिम रोष से पैर पटकती हुई कमरे से बाहर चली गई। • •

एक नई फौज़

एक रोज बैठे ठाले मेरे उर में एक सपुष्ट सा (सालिड टाइप) विचार उमडता हुआ आया कि हिन्दुस्तान जैसा अच्छा खासा देश— 72,75 करोड की घनी आबादी वाला लेकिन लेखक जैसे प्राणी की सख्या की जानिब गौर फरमाएँ तो मुँह की खानी पडे यानी विहायत मायूसी का सामना करना पडे।

देखते देखते इसी विचार के तहत जो दूसरा विचार फौरन से पेशवर मेरे जिगर में फडक उठा, यह था—कि क्यों ने इस कमी को पाटा जाए। मतलब साफ़ ज़ाहिर है कि क्यों न लेखक पैदा किए जाएँ। हमारे हिन्दुस्तान की सर ज़मी खासी ज़रखेज है। थोडी मेहनत मशक्कत की जाए तो फल बहुत जल्द सामने आने लगेंगे। मतलब यह कि ऐसे फल जिनका स्वाद पहले से तैयार सीनियर लेखक चख सकेंगे। खालिस सरकारी महकमें की पालिसी स्टाफ़ की स्ट्रेंथ (तादाद) बढती है तो सीनियर अपग्रेड हो जाते हैं।

कहने की ज़रूरत नहीं—मैं खुद एक ऊँचे किस्म का लेखक हूँ अत ऐसे बुलद खयालात मेरे जैसों के पास ही लाज़मी तौर पर आएंगे। वजह साफ़ है कि मैं एक लम्बे अर्से के बडी शिद्दत से महसूस कर रहा हूँ कि हिन्दुस्तान में लेखकों, अदीबों की कोई कद्र नहीं । कोई भी उन्हें कौडी के भाव नहीं पूछता। थोडा बहुत अगर कोई पूछ लेता है तो वह वह तबका ही है जो लेखक बनने की थोडी बहुत हसरत पालता है। जिस प्रशसा या शोहरत का मैं हकदार और मुन्तज़िर हूँ, वह मुझे फकत ऐसी जमाअत से ही हासिल हो सकती है।

मैंने साहित्य जगत में बहुत कुछ किया। कई एक बढिया से बढिया कहानियाँ लिखीं। समकालीन सामाजिक राजनीतिक परिवेश पर गम्भीर से

गम्भीर लेख। मगर सम्पादक भाइयों ने बडी बेरहमी से मेरी ज्यादातर रचनाओं को लौटा कर अपने को प्रबुद्ध प्रदर्शित किया। तब मैंने मजबूरन (दिल मे न चाहते हुए भी) कुछ उठा पटक की प्रैक्टिस की। कुछ तथाकथित नामी गिरामियों पर थू थू की। (शायद सितारे उलटे चल रहे थे) इस सब का असर भी माकूल साबित नही हुआ। तब किसी कसाई नुमा हमदर्द ने याद दिलाया जो आसमान की तरफ थूकता है वापस थूक उसी पर आ गिरता है।

इससे मुझे तगडे किस्म की चोट पहुँची—इस मुहावरे से नही अपितु इस बात से जल उठा कि जिन तथाकथितों पर मैं थू थू करता फिरता हूँ—वह वाकई में कोई ऊँची या नायाब हस्ती हैं। यानी अव्वल दर्जे के ऑथर और मैं ?

तब मैंने योजना बनाई खुद की एक अदद पत्रिका निकालने की। निकाली भी। लेकिन डेढ अक से ज्यादा नही चल सकी। इसमें जो पैसे फुँके उन्हें मैंने बडे आराम और खामोशी से सर लिया—एक अच्छे लेखक बनने के लिए इन्वैस्टमेंट के रूप में। कदीम जमाने से लेकर आज तक पाया है कि अच्छे लेखक किसी न किसी पत्रिका के सम्पादक उपसम्पादक जरूर रहे होते है। भले ही अल्पावधि के लिए ही सही। यह उनके परिचय के साथ हमेशा जुडता है जो बाद में इतिहास के रूप में लोगों के सामने आता है।

अब मैं जहाँ कही भी कोई चीज प्राकाशनार्थ भेजता तो अपने नाम के साथ— भूतपूर्वक सम्पादक गाँव की गोरी जरूर लिखता। इसके बाद भी ज्यादातर सडोल तथा ईर्ष्यालु प्रवृतियुक्त सम्पादकों ने दूसरे सम्पादक यानी कि मुझको तरजीह दी।

अब इस नए आइडिया ने मेरे पख लगा दिए। सबसे पहले मै एक नाई की दुकान पर पहुँचा। पहले जब एक बार उसकी दुकान पर गया था तो वहाँ एक फिल्मी मैगजीन मुडी तुडी पडी हुई थी। उसे देखकर मेरी बाँछे खिल गई थी। मैं जानता था उसमें मेरी एक कहानी छपी हुई थी। मैंने उस पत्रिका को बडे सहज रूप से उठाया और ऐसे ही किसी अन्दाज से सफ़े पलटने लगा। फिर यकायक एक जगह रुककर बडे भोलेपन से सब ग्राहकों को सुनाता हुआ बोला था "अरे इसमें तो हमारी कहानी छपी पडी है।

ज्यादातर लोगों ने कोई ध्यान नही दिया था—एकाध ने अच्छा वाली

नजर उठाई और तिरछी कर ली। बस एक नाई ही था जो कद्रदाँ निकला। पूरे दम के साथ गर्दन को उठाया अच्छा तो आप कहानियाँ लिखते हैं। हमें भी सिखाइए ना यह गुर। अच्छा बाबू साहब! कितां देना पडता है एक कहानी के छपवाने का?" उसने ग्राहक की गर्दन पर तौलिए से 'छप छप बाल झाडते हुए पूछा था।जीभ से उत्सुकता की दो एक बूँदें टपकी थी।

उस समय तो मैं बडे तिक्त भाव से टाल आया था कि भैया तुम लेखक से बडे आर्टिस्ट हो। बस अपना धन्धा जमाए जाओ।

लेकिन अब मुझे लगा कि यह वक्त का तकाजा है। वर्तमान विषादयुक्त स्थितियों की माँग है। महान् आवश्यकता है कि उसे (नाई को) दीक्षित किया जाए। इस तरह से कुछ अच्छे पाठक और साधारण लेखक तैयार किए जाएँ।

इसी प्रकार कभी मैंने अपने घर पर आने वाले धोबी से भी अपनी कहानियों की प्रशसा की थी। मगर वह एकदम अनपढ था। पढाने को कह रहा था। इसी क्रम में सब्जी मण्डी का मुडू मास्टर मेरी कहानियों के गुण गाता था। इसकी अगुलियाँ टेढी और कटी हुई थी जो डण्डी मारने में नायाब साबित होती थी—मगर लिख नही सकती थी। उसने मुझसे प्रार्थना की थी कि इस विज्ञान के युग में उसके लिए कृत्रिम अँगुलियों की व्यवस्था करूँ। उसने आह भरते हुए कहा था—मेरे पास बेशुमार कहानियाँ पडी हैं। अपनी या अपने दादाजी की ही जीवनी पर ही लिख दूँ तो उस पर पूरी फिल्म ही बन जाए।

मुझे लगा एसे कई और भी आदमियों को थोडा पढा लिखाकर आहिस्ता आहिस्ता लेखक में तबदील किया जा सकता है।

इस दिशा में मेरे सिवा और कौन भुतही हो सकता है। मैंने इस चीज का थोडा थोडा प्रचार शुरू कर दिया कि लेखक बनने के इच्छुक सम्पर्क करें। नाई धोबी, सब्जी बेचने वाले तो पीछे रह गए। हाँ, कुछ स्कूल कॉलेज के छोरे प्रशिक्षण प्राप्ति हेतु हमारे गरीबखाने में आकर खाना खाने लगे। हमने उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए अपनी कुछ अच्छी बुरी कहानियाँ दी ताकि वे उनका उपयोग आकाशवाणी या लोकल पत्रों के लिए कर सकें। अपना आधा कमीशन भी बाँध लिया। थोडे समय में ही चीज उन्हें

लगने लगीं। उन्होंने आना ही छोड दिया।

चार पाँच युवक तो वास्तव में प्रतिभाशाली निकले। वे कई अच्छी पत्रिकाओं में छपने लगे। और अब वह हमारे ही लेखन पर अगुली उठाने लगे। और मज़ाक उडाने लगे।

इन दिनों आकाशवाणी केन्द्र से अनुबन्ध पत्र भी बहुत देरी से आने लगे थे। एक दिन जाकर कारण पता लगाने की चेष्टा की।

पूरी शालीनता में डूबा हुआ उत्तर पाकर हम चकित रह गए—"नई पीढी को भी घास लेने दीजिए। कुछ लोग हैं जो अच्छा बल्कि बहुत अच्छा लिख रहें हैं। उनकी रचनाओं में ताजगी है। हो सकता है पुरानों से बेहतर उन्होंने शायद हमी से पुष्टि चाही।

इससे आगे मैं नही सुन पाया। आप से आप मेरे मुँह से निकल पडा—तो इसमें हमें क्या फायदा?

वे थोडा मुस्कराए। शायद न मुस्कराते अगर उन्हें पता होता कि जिन सबकी बात वे कर रहे हैं। वह दरअसल हमारी ही तैयारशुदा नई लेखकीय टीम है। • •

सत्सग

हडताल थी उस दिन।

मदीलाल, सवेरे सत्सग से लौटा तो सोचने लगा, अब क्या किया जाए चिन्तन आत्मविश्लेषण। हाँ, आज यही किया जाए। प्राइमरी स्कूल से रिटायर्ड हैडमास्टर पण्डित इमरती लाल आज भी लौटती बार हमेशा की तरह उसके साथ थे। वे हमेशा उसे पुनीत जीवन यापन की शिक्षा दिया करते थे—वत्स मदीलाल! जब तक हम अपने निजधर्म नित्कर्म के बारे में स्वय चिन्तन, मनन न करें उन बातों को अमल में न लावें जो हमारे धर्म ग्रन्थों में लिखी हैं, स्वामीजी महाराज के लाख सुन्दर से अति सुन्दर प्रवचन सुनते रहें कोई फायदा नही सत्सग जाने का।

तभी मदीलाल को अपने स्वर्गवासी पिता नियामत फल का ध्यान हो आया, जिन्होंने हाल ही में अपनी आढत की दुकान मदीलाल को सँभलवा कर सदा सदा के लिए अपनी आढत की दुकान मदीलाल को सँभलवाकर, सदा सदा के लिए, इस पापी जग से आँखें मूँद ली थी। आँखें मूँदने से पूर्व मदीलाल को, यही समझाया था कि दुकान का ख्याल रखना। इसे ढग से चलाना। ज्यादा उधार न देना। पर बोलना सबसे मीठा मीठा। सर्बती ढग से। हर दीवाली को लक्ष्मी पूजा करना और सिन्दूरी रग से ऋद्धि सिद्धि लिखवाया करना। अफसरों के घरों में मिठाई के पैकिट भिजवाना। और सबसे बडी बात, सुबह सवेरे उठकर सत्सग ज़रूर जाया करना। इसकी बडी महिमा होती है। इससे घर बार दुकान—लेनदारी खूब फलती चमकती है। आदि आदि।

पिता के मरने के बाद मदीलाल को पिता के बताए दूसरे गुर सीखने की

की बनिस्बत सबसे आसान गुर यही लगा था कि चुपचाप सवेरे उठकर सत्संग हो आया करे। पहले वह सुबह सुबह हम उम्र नौजवानों के साथ मैदानों में दौड लगाया करता था। चलो, दौड न सही, जाकर मन्दिर में चुपचाप बैठ रहो। यह काम दौड लगाने से खासा आसान था। मगर बैठने का अर्थ होता है, सुनना भी।

इधर मदीलाल जो कुछ स्वामीजी के मुँह से सुनता, उससे तो उसका दिमाग खराब होने लगा था। हैरानी की बात है जिस स्वामीजी को सुनने की पिता श्री नियामत फल ने सिफारिश की थी वही (स्वामीजी) पिताजी के ही विरोध में बोले जा रहे थे। प्राय सारे के सारे नियमों को ही तोड मरोडकर पेश करते—कभी कम नही तोलना चाहिए। कभी झूठ नही बोलना चाहिए। कभी किसी को चुगली नही करनी चाहिए। और चापलूसी करना मनुष्य के घोर पतन की निशानी है

अरे यह सारे नियम तो स्वर्गवासी नियामत फल के बताए नियमों से उलटे सुलटे थे। पिता बताते थे—

बिना झूठ बोले बिजनेस चल ही नही सकता। ग्राहक भगवान् का रूप होता है उसे कभी खाली हाथ न लौटाओ अगर ग्राहक रेट घटाने पर ज्यादा जोर दे तब तो डडी अवश्य मारो। यही असल आदत धर्म है। मगर बात ऐसी कहो कि ग्राहक खिला खिला मुँह लेकर लौटे। सेल एक्साइज तौल के अफसरों की खुशामद करना भी दुकानदारी का धर्म है। अगर वे अपने से बडे अफसरों से तग हों तो तुम भी उनके बडे अफसरों की बुराई कर उन्हें खुश रखो। अगर कोई दूसरा दुकानदार, कम्पीटीशन द्वारा तुम्हारी आढत के आडे आने लगे तो उसकी बुराई करो (जरूरत पडने पर कभी कभी पिटाई भी) कराओ और चुगली न करने से तो अपनी ही दुकान की लुटिया डूबती है। सो यह सब भी हमारे धर्म के अन्दर आता है।

मदीलाल सोचता जरूर पिताजी बडे भोले रहे होंगे वरना यह सब चीजें चलाते उसके पिता ने मन्दिर के सत्संग में जाकर बैठने की सलाह क्यों दी ?

मदीलाल ने यह भी नोट किया कि उसके पिताजी जैसे दूसरे बहुत से व्यापारी भी तो हर रोज सत्संग में आते हैं बल्कि उनमें से बहुत सारे तो शाम को भी मन्दिर में पहुँचकर खूब घटे घडियाल बजाते हैं। गला फाड फाडकर

आरती भजन करते हैं। इसमें वे कहते हैं, "बड़ा रस परापत होता है।"

पता नहीं क्यों मदीलाल को किसी सुख या रस का अनुभव नहीं होता जो रस वहाँ पर झूमते गाते-बजाते हुए लोग प्रकट करते हैं। इससे ज्यादा आनन्द तो दौड लगाने में ही आता था। एक-दो दफा तो उसने सोचा भी कि मन्दिर फन्दिर की पक्रिमा छोड फिर से मैदान की परिक्रमा शुरू कर दे। मगर इस इमरती लाल का बुरा हो। इसने डरा दिया, "इससे कहीं भगवान् नाराज न हो जाएँ और दुकान का भट्ठा न बैठ जाए।"

—मरो सालों भक्त। मदीलाल को आश्चर्य हुआ। यह एकाएक उसके मुँह से क्या निकल गया। किसके लिए निकले यह शब्द? भगवान् के लिए? घोर पाप। अपने स्वर्गवासी पिता श्री नियामत फल के लिए? शर्म शर्म। प० इमरती लाल या स्वामीजी के लिए? बुरा हो। ओह सबने मिलकर तो मेरा दिमाग खराब कर रखा है।

तभी बाहर से घडियाल का सा भारी स्वर गूँज उठा—"मदीलालजी हैं?" और इसके साथ ही पाँच सात भारी भरकम शरीर अन्दर आ दाखिल हुए।

"क्या कर रहे थे?" झक सफ़ेद कुर्ता पाजामा पहने हुए झुबरमल जी ने पूछा।

सबको बैठाते हुए मदीलाल ने उत्तर दिया—"जरा चिन्तन मनन कर रहा था।" (मन ही मन सोचा) शायद इन सबको गालियाँ दे रहा था।

बनु राज बोले—"न न न इससे दिमाग खराब होता है भाई।

मदीलाल तुरन्त प्रभावित हुए—कुछ बोलें, इससे पहले नत्थू राओ ने फौरन जोड़ा—"मत किया करो यह चिन्तन फिन्तन। बस मन्दिर गए, थोडा दान पुन्न किया—कमीशन भगवान् को भी चाहिए—थोडा बैठे उठे फिर वही थोडी देर बिजनेस की बातचीत की। तुम तो हमारे बीच आकर खडे होते नहीं। फिर भी तुम्हारे मन्दिर आने का फल तुम्हें मिल गया। हम तुम्हें वहाँ देखते तो हैं। इसीलिए तुम्हारी याद भी बनी रहा।

किरौतीमल ने अपनी बडी घुमावदार पगडी ठीक करते हुए कहा—"तुम्हारा बाप नियामत फल तो हमें हमेशा उखाडने में लगा रहा। खैर मरे हुए की बुराई भगवान् मुँह से न निकलवाए। तुम वैसे तो हमारे

बच्चों के बराबर हो। मगर आढत व्यापार में हमारे बराबर इज्ज़तदार साथी हो। हम तुम्हें सचेत करने आए हैं कि हमारी हडताल से चिढकर सरकार हम लोगों के गोदामों घरों में छापे मरवाने वाली है। यह बात सरकारी आदमी हमें बता गया है। ठीक वक्त पर कमीशन उन्हें भी पहुँचता रहता है। तुम तो चंदा देते हो ना।"

"जी हाँ ठाक वक्त पर। मदीलाल ने जरा झुकते हुए कहा।

"ठीक है। अपना स्टाक जल्दी से चैक कर लो। जो कुछ हटवाना हो तो गधों का इन्तजाम हम मन्दिर सभा वाले करवाए देते हैं। किसी बात से घबराना नहीं मदीलाल जी! झूबरमल ने रोबीली आवाज में आश्वस्त किया।

मदीलाल के ज्ञानपट खुल गए आज पहली बार मन्दिर जाने की सलाह देने वाले नियामत फल के आगे मन ही मन नतमस्तक हो उठा। फिर सब मेहमानों के सामने हाथ जोडता हुआ उठ खडा हुआ कि जरा और बैठे रहें। नारियल नाश्ता आ रहा है। • •

बड़ी साधारण बाते

मन में बडी उत्सुकता उत्कठा भरकर आप बडे आदमियों को देखने सुनने गए होगें। जूतों को घिसाया होगा। पैरों पिण्डलियों को थकाया होगा। भाषण के दौरान भेडचाल से तालियाँ पीटकर हथेलियों को मसला होगा।

—क्या पाया? कौन सी अलौकिक सूरत देख ली? दिमाग भी चट। शरीर मन सब कुछ लुटा लुटा सा अनुभव हुआ होगा। घर लौटते वक्त।

"आखिर भाषण में ऐसी कौन सी बात थी जिसे हम पहले से नही जानते थे। अथवा जिसे हम ही नही कह सकते थे।"

बस, फर्क यही रहा कि वही एक बात जब बडे मुँह से निकलती है तो बहुत महत्त्वपूर्ण रगत हासिलकर अखबारों की सुर्खियाँ बन जाती है। आकाश की वाणी बन चहुँ दिशाओं में कूकती फिरती है। और ठीक बिल्कुल वही की वही बात जब गडमच्छन्द राम के मुँह से निकलती है तो निहायत ओछी—भोडी होकर आँख मुँह नाक सिकोडने के लिए विवश कर देती है।

पतले ठिगने से (लेकिन) बडे साहब को खूब चौडी रेहडी मार्का बेल्ट बाँधे देखा होगा। किन्तु अस्वीकार किया होगा कि यह बेल्ट इतनी चीप क्योंकर हो सकती है। सेन्ट परसेन्ट इसका कलर सिम्पल एण्ड सोबर है। यह तीस पैंतीस से कम तो क्या होगी—इसका बक्ल किसी पुरातन कलाकृति के आधार पर ढाला गया है। फूहड ढग से हँसते देख उन्हें फराख दिल डैमोक्रेटिक अफसर बताया होगा। और दूसरे ही दिन जब उन्होंने भृकुटि कस ली होगी तो उन्हें अत्यन्त अनुशासन प्रिय कहा होगा।

एक वरिष्ठ महानुभाव जो उम्र में भी कुछ बडे होने के कारण अपनी जान पहचान वालों से 'विश' वसूल कर लिया करते हैं। किंचित् मुस्करा हैल्यू जैसा कुछ स्वर निकाल हाथ का ऐरो बना देते हैं।

मगर अचानक वे यह सब स्थगित कर देते हैं। अभिवादन अनुतरित रह जाते हैं। पहले यह समझा जाता है—शायद अपने ख्यालों में मशगूल गुजर होंगे। या चिन्ताग्रस्त परिस्थितियों का कोई दौर आन पडा होगा बेचारों पर। किन्तु परन्तु पाया यह जाता है—कि वे अफसर बन गए हैं।

उक्त नीति को उन्होंने बहुत मुद्दत तक बरकरार नही रखा। फिर से वे स्वय अभिवादन करने लगते हैं। तब यह सोचा जाता है कि यह अफसरी की बू का नाश हो गया है। साहब नार्मल लेवल पर आन टिके हैं। तभी राज से आगाह किया जाता है कि बेचारे रिवर्ट हो गए हैं।

बडे होने का प्रमाण है। बडे बडे वायदे करना। तमाम तकरीरों में। आम लोगों से व्यक्तिगत स्तर पर फ़कत वायदे। जिन्हें कभी निभाया नही जाता। अगर निभाने लगें—वे सोचते हैं—तो शायद लोग बाग उनके बडे होने में ही सन्देह करने लगेंगे।

ऐसे ही किसी बडे आदमी के कदमों के इर्द गिर्द परिक्रमा करते करते एक दिन आप हाँफते हुए गुस्सा कर बैठेंग (यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी अनुचित नही जान पडता कि जैसे प्यार पर बस नही होता ठीक उसी प्रकार क्रोध पर भी वश नही चलता। क्योंकि दोनों ही की एक श्रेणी है। दोनों को दबाने से इनमें खासा उछाला आने लगता है) खैर चूँकि जैसे बडे आदमी की जैहनियत वायदे करना है तदनुरूप सामान्य जन की नियति दूसरों पर क्रोध करना होता है। क्रोध की अग्नि में अपने आप को जलाना सुलगाना होता है। सामने वाले को कोसते कोसते आखिर एक दिन गुस्से में भरा मन उडेल देना होता है।

आप कुढ कर लडखडाती ज़बान से कह बैठेंगे—"तो तो साहब जब आपको काम नही कराना था तो वायदा ही क्यों किया था—"

तब वे भी आपके ताव के अनुपात से $1\frac{1}{2}$ ताव अपने विस्तृत ललाट पर

स्पष्ट करने हेतु ऐनक उतारकर धमकियाना अन्दाज से कह देगें, "गजब हुआ—गलती की जो आपसे वायदा किया। आइन्दा किसी से कोई वायदा नही करेंगे। अब तो रास्ता नापो बाबा समझ लो अब आपका काम नही होगा, बस।

कई कई महीनों से रुका आपका क्रोध बाँध तोड चुका है। अपने पत्रकार मित्र की धौंस का फन्दा उन पर डाल देते हैं।

तब वे एकाएक ताव को $1\frac{1}{2}$ कर देते हैं। आपके कन्धे पर हाथ फेरते हुए अमृतवाणी का घोल तैयार करने लगते हैं "अजीज—अरे बरखुर्दार तुम तो असल में बुरा मान गए। हमने तो महज मजाक किया था। (आपके ज्ञान में इज़ाफ़ा होना लाजमी है कि बडे आदमियों के ऊँचे किस्म के मजाकों को समझने में आप आज तक इस कद्र नादान एवं नाकामयाब बने रहे) "तुम यूँ करना काके कल ठीक इसी वक्त आ पधारना बस समझ लो काम हो गया, अब तो खुश।" खैं खैं कर आपको देखने लगते हैं।

तो आप भी उन्हें चौंधियाई नजरों से देखने लगते हैं। क्या यह वही की वही दो मिनट पहले वाली शक्लोश माइल हैं—" हजूर अभी भी तो आपने कभी किसी से कोई वायदा न करने की कसम खाई है।"

वे आपके बाँगडूपन पर बीच में ही टोक हँस देते हैं, तुम नही समझते हमारा जीवन बिना वायदा किए आश्वासन दिए एक कदम भी आगे नही सरक सकता।

आप एक ठण्डी मीठी सी आह खीचते हुए उन्हें नमस्कार कर चल पडते हैं और सोचते हैं कि अन्दर जाकर वे अपनी पत्नी बच्चों को समझा रहे होगें कि अगर वायदे कर करके वे उन्हें निभाने की जिम्मेदारी भी ढोने लगें तो आगे चल कैसे पाएँगे ?

एक साहब अचानक बडे आदमी बनकर गायब हो गए। जब सवा तीन साल बाद उनकी एक झलक मिली तो हम प्रेम भाव से गदगद हो उठे। कहा "जैसा कि सुन रहे हैं, भगवान् से यही मना रहे हैं कि शीघ्र से शीघ्र मन्त्रिमण्डल भग हो जाए जिससे आपके दर्शन तो होते रहें। पहले की तरह बेंचों पर बैठकर चाय सुडकते हुए गपशप तो कर सकें।"

वे बुरी तरह से चिढ गए। पाँच डिग्री से भी ऊपर का ताव खाकर बोले, "तुम्हें गप्पों की पडी है। यहाँ समूचे राष्ट्रों की चिन्ता हमारा खून सुखाए जाती है। जिन वायदों को हम निभा नहीं पाएँगे उन्हें पूरा करने के लिए जनता से अगले पाँच वर्ष की अवधि माँगेंगे।

तभी एक पतला दुबला भिखारी सामने आ खडा हुआ। हम उन्हें देखने लगे। और वे हमें।

हमने उनके विषय में कुछ रोचक तथ्य अपने एक मित्र द्वारा सुन रखे थे। कि भाषण देने कभी समय पर भी पहुँच भी जाएँ तो एकाध घन्टे के लिए इधर-उधर लुका छिपी खेलते हैं ताकि जनता दीदार से पहले इन्तजार का परलुत्फ उठाती नज़र आए।

राजधानी से तो फर्स्ट क्लास में सफर शुरू करेंगे। अपना स्टेशन आने वाला होगा तो सेकण्ड जनरल में आ जाएँगे। हर मुसाफिर को हिदायत देंगे—"भिखारियों को भीख मत दो। उन्हें अकर्मण्यता के दोज़ख की राह न धकेलो।

मैंने जी कडाकर उस भिखारी को भीख नहीं दी। वह घिसिटता हुआ सा आगे निकल गया तो वे हमसे मुखातिब हुए "तुम्हारे अन्दर दिल नहा। लेशमात्र दया नही। त्याग का एक भी सेल नही। तोबा ऐसे क्रूरतापूर्ण वातावरण में हमारे प्रिय देश का उत्थान नितान्त असम्भव है।"

अब लीजिए

× × ×

आँखों को फोडा होगा। कानों को ऐंठा होगा। खोपडी को बार बार सहलाया होगा। अनुभवों का गहरा गोता लगाया होगा। इसके बावजूद बड़े आदमियों की थाह नहीं पा सके होगें। इसीलिए शायद अब की अपने आप पर तरस आया होगा। • •

विवाद

सेठ कुरतआ शाह महात्मा थे।

मगर कुछ लोग हैं जो ऐसा नहीं मानते। उनका अटल विश्वास है कि वे फ़कत शास्त्री थे। कॉलिज के एक दर्शन शास्त्री कन्दूरियाजी ने अपने एक सद्‌विचार युक्त व्याख्याता श्री कण कण दास से मिलकर, किसी बडी साजिश के तहत उनकी हत्या करा दी थी। कन्दूरिया जी के विषय में यह कहा जाता है कि वैसे तो उनका सेठ कुरतवा शाह के साथ अच्छा खासा उठना बैठना था। लेकिन एक तो वे विद्वत्ता में सेठ कुरतवा शाह से मात नहीं खाना चाहते थे दूसरा वे उनके इतने निकट सम्बन्धी भी हैं कि आसानी से उनके वारिस होने का दावा भी ठोक सकते हैं। शायद इसीलिए

लेकिन जो लोग सेठ कुरतआ शाह को महात्मा मानते हैं उनका कहना है कि अब वे अपनी भावी साँसों में विशेष दम नही पाते थे। अपने आपको एकदम निरीह बेबस समझने लगे थे। उनका किसी पर बस नहीं चलता था। कन्दूरियाजी तथा उनके सद्‌विचारयुक्त व्याख्याता श्री कणकण दास सरीखे बडे बडे नेताओं का स्वदेशी वेश भूषा परित्याग तथा खट से हवा के झोंक के साथ पृष्ठों की मानिन्द पटलने वाली उनकी सूरतें तथा लडकियों के सग चलते, उनके ब्वाय फ्रेण्डों की शक्लें देख देखकर स्वय ही उन्होंने आत्महत्या कर डाली थी।

लेकिन इसके बरअक्स चन्द लोगों की एक छोटी सी तीसरी जमात भी है जो बडी सजीदगा से अपनी बात यूँ बयान करती है—वे महात्मा थे अथवा शास्त्री सामान्य जन के लिए यह एक चुटकीली दिलचस्प जोरदार विवादस्पद मसला हो सकता है, किन्तु जहां तक सेठ कुरतआ शाह का

ताल्लुक है वे उन हज़ारों लोगों में से एक थे जो, इन वाद विवादों से अलग था, अपनी इकाई में यकसाँ ज़िन्दगी बसर कर इस ससार से ऐसे फरार होते हैं कि उनकी जिन्दगी के खात्मे के बाद उनके चन्द नाम लेवा उनके बारे में ज्यादा लेखा जोखा नहीं करते। अगर लेखा जोखा करते हैं तो महज़ मरने वाले की जायदाद का—जो किसी खास मजबूरी के तहत मरने वाला अपने साथ नही ले जा सकता।

इसलिए उनके बारे में इसी तरह के एक ही ढर्रे के विवाद पूरा जोर लगाकर खडे कर दिए जाते हैं। जो कई दिनों महीनों तक अखबारों की सुर्खियाँ बने रहते हैं।

यह सच है कि ऐसी तराने-बहस छेडने वाले चन्द तमाशबीन टाइप लोग भी होते हैं। महज वक्त कटी उनका मकसद होता है। लिहाज़ा ऐसे नुस्खे मिलते ही उनकी बाछें खिल जाती हैं।

पर ऐसे विवाद सीरियसली खडे करने वाले उनके यानि मरने वाले के अव्वल नम्बर के नज़दीकी रिश्तेदार होते हैं। वे मरने वाले की मौत के बाद फौरन से पेश्तर आपस में भिड जाते हैं और फिर इस बात की होड लगा देते हैं कि कौन किसको पहले कचहरी जेल की खूबसूरत इमारत के दीदार कराता है।

अखबार वाले, जैसा कि पहले अर्ज किया जा चुका है उन द्वन्द्वी प्रतिद्वन्द्वियों से खासे खुश नजर आते हैं क्योंकि वे ही तो उन सुर्खियों का मसाला मुहैया करते कराते हैं।

वे यानी अखबार वाले, बडे बडे शीर्षकों में छापने में पहले मोर्चा मार ले जाना चाहते हैं।

मामला हत्या का या आत्महत्या का?

दर्शनशास्त्री व कन्दूरिया जी के पास कुछ ही दिन हुए उन्ही के लँगोटिया किस्म के यार ने खुद अपनी आँखों से बहुत सारी नीद लाने वाली गोलियाँ देखी थी।

और फिर तीसरे ही दिन रात्रि आठ बजे के बाद सेठ कुश्तआ शाह महात्मा शास्त्री (जो भी ये थे) की अर्थी जलवा भी दी गई।

यह सब इतनी अफरा तफरी में हुआ कि पूरी मित्रमण्डली को उनसे

शिकायत बनी रही कि आखिरी वक्त सेठजी से अपने जनाजाए जश्न में उन्हें बुलावा देकर इज़्ज़त नही बख्शी। इसमें जरूर कोई-न कोई राज है।

अगर सेठजी को कब्र में गाडा गया होता तो भी कब्र ख्वार करने के कुछ ब्राइट चासेंज थे। जला देने में जलाने वालों को सबसे बडा मुफाद यही रहता है कि जैसे चोर अपने पीछे कोई भी निशान न छोड जाए।

आत्महत्या जैसे कोई मामूली खेल हो, कई लोग ऐसा सोच लेते हैं और अपने निकटतम मित्रगण से मनुहार करते हैं—प्रियवर, हमसे आत्महत्या कराओ। सद्विचारयुक्त व्याख्याता श्री कणकण दास ने मित्रों के सम्मुख *साफ साफ शब्दों में मगरूरी अन्दाज अन्दाज में स्वीकार किया था कि उन्ही* के एक लैक्चरार् (उनका इशारा कन्दूरियाजी की तरफ था) से प्रेरणा पाकर सेठ कुश्तआ शाह ने आत्महत्या की थी, लेकिन कोर्ट के कठघरे में पहुँचते ही वे साफ साफ इस बात से नट गए थे और मरियल सी आवाज में बोले थे—पूअर लेक्चरर तो स्टूडेण्ट्स पर हा कोई प्रभाव नही डाल पाता—(इस बात के प्रमाण में उन्होंने कॉलेज का रिजल्ट दिखा दिया था कि सारे के सारे छात्र दर्शन शास्त्र में लुढके पडे थे।) फिर भला कुश्तआ शाह जैसा महात्मा। शास्त्री होनहार समझदार पैसे पैसे का पीर पैसे का मोह कैसे त्याग सकता था। उन्होंने कोर्ट से हाथ जोडकर फ़रियाद की कि वह हाथ धोकर पीछे पड जाए। मामला शर्तिया आत्महत्या का न होकर खालिस हत्या का ही निकलेगा। शायद इसी आधार कन्दूरियाजी को छोडकर सेठ कुश्तआ शाह के तमाम रिश्तेदारों की धरपकड शुरू हो गई।

इधर कन्दूरियाजी और उनका सद्विचारयुक्त परम चहेता व्याख्याता श्री श्री कणकण दास दोनों पार्कों की बेंचों पर, सिनेमा घरों या होटलों में चहकते फिरते थे कि अब बोलो। तब चन्द रिश्तेदारों ने उनके पास सुना है कुछ चमकीले दस्तावेज बन्द लिफाफों में भेजने शुरू कर दिए।

अब अखबारों के माध्यम से इसी प्रचार को वे दोनों कोई राजनीतिक रग देने में लगे हुए हैं कि यह तो बकवास है। बेवकूफ लोगों का लिजलिजा मजाक है। यह एक ऐसा बेतुका विवाद है जो लगातार चलता रहेगा जब तक कि लोगों को कोई और मजेदार विवाद हासिल नही हो जाता। बेशक सेठजी के प्रत्येक रिश्तेदार के गालों को सख्त रस्सियों की लपेट में क्यों न ले लिया

जाए और दूसरे ज़राइम पेशा लोगों के रहते उन्हें इस ससार से दरकिनार क्यों न कर दिया जाए—यह मामला हत्या का है या आत्महत्या का, सीमा विवाद की तरह ज्यों का त्यों बना ही रहेगा जैसे कि यह विवाद आज भी बना हुआ है कि सेठ कुरतआ शाह महात्मा थे या शास्त्री। • •

परिचर्चा

आज फिर रचनाएँ थोक के भाव लौटी थी।

सारा दिन 'फ़न साहब' सम्पादकों को कोसते रहे थे। रात हुई तो नीद नही आ रही थी कि तभी कही से कोई उल्लू बोल उठा। वे बुरी तरह से काँप गए, 'बेडा गरक' की भावना से उस अँधेरी रात में उन्हें घबराहट दबोचने लगी। कसमसाए। हनुमान भगत थे। फटाफट हनुमान चालीसा का जाप करने लगे। इसका पुरजोर असर हुआ। थोडी ही देर में समूची स्थिति पलटा खा चुकी थी—"हूँ, तो लक्ष्मीजी निकट सरक रही हैं—उल्लू रात को क्यों बोलते हैं? इस गूढ विषय पर उनसे परिचर्चा लिखवाने हेतु प्रेरणास्रोत बनकर आया है यह उल्लू। हे उल्लू, तेरा स्वागत है।

महेन्द्र जो पजाबी का माना हुआ लेखक था वह फ़न साहब को अपना उल्लू सीधा करने की ऐसी ही सलाह दिया करता था कि तुम्हारी कहानी कविताएँ तभी छपेंगी जब तुम पहले परिचर्चाएँ आदि सम्पादकों को भेजो। मगर फ़न साहब की समझ में ही नही आता था कि आखिर क्या किस तरह की परिचर्चा आयोजित करें।

मगर हर चीज का एक वक्त होता है। रात काफी बीत चुकी थी। वे खुशी खुशी अचिन्तन सहित लम्बी लेट मार गए। परिचर्चा आयोजक को क्या! वह सारी की सारी बला इन्टरव्यू देने वालों के सिर डालकर उन्हें अपनी मगजखोरी के लिए छोड, स्वय मजे करता है। उसे तो बल्कि जिससे वह इन्टरव्यू ले रहा है उसका दिमाग चाटने की पूरी पूरी छूट रहती है

मगर सुबह हुई तो एक नई परेशानी को जन्म देती हुई। दिन में उल्लू नजर नही आ रहे थे। लेकिन इस कठिनाई के बावजूद वे अपने को एक

पक्का काठीबाज सिद्ध करने के लिए उल्लुओं को पकडने निकल ही पडे। हौसला बुलन्द रखा और अपने से बोले—मिलेगा कैसे नही एक नही अनेक। हमारी सुहावनी धरती पर भला उल्लुओं का टोटा है। इस सोच के साथ एक दरवाजे पर पूरे जोश में दस्तक दे मारी।

दरवाजा खुलते ही फ़न साहब ने सवाल ठोक दिया— उल्लू रात को क्यों बोलते हैं ?

सबब की बात—दरवाजा खोलने वाले एक ज्योतिषी निकले। उन्होंने दो चार दफा खों खों कर के खाँसा और खाँसते ही सोच डाला—आज सबेरे सबेरे जाल में कोई ठल्लू आ फँसा—आइए आइए कहते हुए होंठ चौडे किए। आगन्तुक के कदमों पर आँखें बिछाते हुए अपनी बीसियों साल पुरानी दरी बिछा दी।

बाद में उनके सम्मुख जब वास्तविकता के द्वार पट खुले तब भी उन्हें निराशा नही हुई। कहना चाहिए दूसरी टाइप की खुशी से फूल गए। उन्हें अपने ज्ञाता होने का सुख प्राप्त हुआ जो अपने सम्पूर्ण अनुभव भण्डार से लैस एक सवाददाता के समक्ष विराजमान है। उनके अन्दर एक अदद और फ़ोटो छपवाने की लालसा बल्लियों उछलने लगी। वह भी फोकट में। बचपन में तो उन्होंने एक बडे अखबार में घर से बाईस रुपए चुराकर भेजे थे। इससे उनका फोटू गुमशुदा की तलाश के कालम में प्रकाशित हुआ था। वे यह मौका हाथ से जाने नही देना चाहते थे। उल्लुओं को बुलवा नहा सकते थे। बुद्धि को खूब कुरेदा थोडी देर में ही फ़न साहब के मगज को भी तर करने लगे— उल्लू की जगह आदमी शब्द रख लेंगे तो कोई खास फर्क नहीं पडने का। फिर उन्होंने मिलकर रात की जगह नीद शब्द का चयन किया। इस प्रकार परिचर्चा के विषय ने नया स्वरूप धारण कर लिया—आदमी नीद में क्यों बोलते हैं ? सुविधा हेतु बोलने के अन्तर्गत खुर्राटों को भी मान लिया गया। इस सुविधा के मिलते ही अब उनके सामने कोई दुविधा नही थी।

एक खूबसूरत लगने वाली पत्रिका में एक धाकड परिचर्चा छपी थी। दसेक इन्टरव्यू लेने पडे थे। इससे ठीक-ठाक डील डौल की औरतों युवक युवतियों इन्क्लूडिंग एक आध डॉक्टर से भी फ़न साहब के घनिष्ठ सम्बन्ध

हो गए थे। जिन साक्षात्कारदाताओं की उम्रें ज्यादा वर्ष फाँद गई थी उन्होंने अपनी अल्मारियों दराजों की काफी खोज पडताल के बाद फोटो उपलब्ध कराए थे।

यह परिचर्चा जबर्दस्त लोकप्रिय साबित हुई। क्योंकि इसमें दुर्लभ जानकारियाँ समुद्री किनारों की सीमा से अधिक लाँघ गइ थी। किसा ने खुर्राटे लेने का कारण यह बताया, ताकि उसकी दबग घरवाली यानी कि झगडालू बीवी उनसे डरती रहे। एक मेडिकल स्टूडेण्ट का दावा था कि जिस प्रकार बिना सपने के नीद का अस्तित्व नही होता, उसी प्रकार एक सुखी नीद' के लिए खुर्राटों का होना नितान्त आवश्यक है। यह बात दीगर है, भले ही (यह खुर्राटे) किसी अन्य की सुखी नीद को उजाड कर रख दें।

एक औरत ने नीद में बोलने के अपने अनुभवों से अनेक भावुक पाठकों का हृदय द्रवित कर डाला—जो बात मैं अपनी बहू बेटियों या बेटों के मुँह पर नही कह सकती उसे मैं बडे मजे से नीद में बोलने के बहाने उगल देती हूँ। इस लाजवाब नुस्खे का असर धीरे धीरे रग ला रहा है। इसी प्रकार किसी ने नीद में चलने फिरने और नीद में अविस्मरणीय साहित्य लिखने जैसी चीजों से पाठकों को चौंका दिया था।

इस परिचर्चा के बाद पत्रिका की माँग बढ गई। फ़न साहब को एक और परिचर्चा का आर्डर मिला। फ़न साहब ने फौरन एक कहानी और दो कविताएँ भेज दीं और लिखा—टाइम लगेगा तब तक इन्हें छाप दें। सम्पादकजी के लिए यह एक किस्म का आदेश था जिसका उन्होंने तत्काल पालन किया।

नए विषय के लिए पहले की तरह ज्यादा माथा पच्ची नहीं करनी पडी। पडोस की एक औरत की आवाज आकाश नाप रही थी। माजरा साफ था—एक मर्द दिन दहाडे बीवी द्वारा डाँटा जा रहा था।

फ़न साहब टोह लेने लगे। जब आदमी रोटी की बजाय झिडकें खाकर दफ्तर की जानिब रवाना हो गया तो फ़न साहब औरत के पास पहुँचे। पूछा "क्या आप अपने पति से नाराज़ रहती हैं?" औरत पहले से जली भुनी बैठी थी उसका आदमी जान छुडाकर भाग चुका था, गुस्सा उसके पास काफी बचा पडा था। कडककर बोली—"क्या आप काजी हैं?" फ़न साहब डर गए कि

जरूर कहो बिजली गिरी है लेकिन फिर जल्दी ही सँभल गए। निहायत तरल वाणी का प्रयोग किया। बोले—"काजियों का युग समाप्त हो चुका है। आप जानती नही, मैं पत्रकार हूँ। सवाददाता हूँ। कवि और लेखक हूँ। अपने समाज के टूटते बिखरते परिवारों को बचाने की जिम्मेदारी अपने कन्धों पर लिए घूमता हूँ। देवी जी। यह समस्या केवल आपकी ही नही है। पूरे मध्यमवर्गीय उच्चवर्गीय एव आर्थिक दृष्टि से लुढके बडे परिवारों की है। कहते कहते फ़न साहब ने अपना लाल रग का बैग खोला। एक सुन्दर सी फूलोंवाली फाइल निकाली। औरत से फोटो निकालने को कहा और बोले अब जरा जबान सँभालकर बोलिएगा क्योंकि सब कुछ नोट होने वाला है जो शीघ्र ही एक साप्ताहिक पत्र में छपेगा।

औरत पिघल गई। उसने सहयोग दिया। अपनी और सखियों से भी फ़न साहब को मिलवाया।

बाद में उस औरत के बारे में फ़न साहब ने यूँ शुरू किया था। पहले पहल जब मैं श्रीमती से उनके घर पर मिला तो वह काफी गमज़दा और गर्म मूड में थी—मगर मेरे यह पूछते ही कि क्या आप अपने पति से नाराज रहती हैं पहले तो वह सुकचाई फिर शर्माई। और फिर एकाएक उनके हाथ में जाने कहाँ से फूलों वाला सुन्दर रूमाल आ गया। वह आँसू पोछती रही। मैं उन्हें चुप कराता रहा (काजी वाली बात फ़न साहब एकदम से चबा गए।)

इस टापिक की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरता यही रही कि इस परिचर्चा के अन्तर्गत पाठकों को 'प्योर चेहरे' देखने को मिले। वह बातें जानने को मिली, जिन्हें वही नही उनके दादा परदादा भी जानते थे—शराबी पति। पिटाई करने वाले पति। प्रेमिका रखने वाले पति। शादी से पहले सब्ज़ बाग दिखाने वाले पतियों की पोल खोली गई जो पहले से हज़ार बार खुली पडी थी।

इस परिचर्चा के छपने के दूसरे दिन फ़न साहब क्रीम पाउडर लगा टाई बाँधे काफी हाउस पहुँचे। महेन्द्र के साथ और भी बहुत से लोग बैठे हुए थे। महेन्द्र ने गर्मजोशी से उनका स्वागत करते हुए कहा—"कहिए फ़न साहब! अब तो खुश हो।"

"क्या बताएँ" फ़न साहब मुँह लटका कर बोले "अपनी तो मुसीबत खडी हो गई है। अब पुरुषों की तरफ से जवाबी हमला होने वाला है।

उन्होंने सम्पादकजी को लिख भेजा है—हम भी तो अपनी पत्नियों से नाराज रहते हैं। सम्पादकजी ने उनका हाल जानने को फिर मुझे ही नामजद किया है।"

"मिस्टर फ़न, डोन्ट पोज," महेन्द्र ने डाँट मारी "मैं जानता हूँ, तुम अन्दर से बहुत खुश हो। इन्ही की बदौलत तुम्हारी तमाम लौटी हुई कविताएँ कहानियाँ छप रही हैं। कल तक तुम्हारे लिए साहित्य में सन्नाटा था। आज तो नहीं है भाई। चुपचाप सबको चाय पिलाओ और मीठे का भी आर्डर दो।"

फ़न साहब वास्तव में अन्दर से पुलकित थे। खें खें हँसने लगे फिर जोर से पुकार लगाई—"बेरा!" • •

नए शब्दकोश का निर्माण

अगर आप एक प्याला गर्म गर्म चाय पीकर मुँह धोएँ और मुँह को शीशे में देखें तो आपको वहाँ रगत नजर आएगी। यह एक निजी तजरबा है। यदि विश्वास और श्रद्धा से इसका पालन करें तो यह अपने में स्वयसिद्ध शाश्वत सत्य है। इसके लिए किसी भी प्रकार के प्रमाण अथवा तर्क आदि की आवश्यकता अपेक्षित नही है। जिस प्रकार भगवान् को पाने के लिए आपको श्रद्धा भक्ति एव अटूट विश्वास का सहारा लेना पडता है—ठीक उसी प्रकार चेहरे की रगत देखने के लिए यह फारमूला लागू होता है।

प्रोफेसर के वक्तव्य पर कक्षा के सारे लडके लडकियाँ खिलखिलाकर हँसी से लोट पोट होने लगे।

साइलेंस साइलेंस कहकर तथा मेज बजाकर प्रोफेसर ने सबको चुप कराने की कोशिश की। मगर बेकार। बात गेंद की तरह मदारी के मुँह से निकलकर दर्शकों के मध्य जा पहुँची थी। और वे घुलकर अपना मनोरजन कर रहे थे।

धीरे धीरे सभी इस बात से परिचित हो रहे थे। प्रोफेसर दुलारे की बुद्धि सठिया रही है। कुछेक सजग छात्रों ने यह बात ऊँचे स्तर तक पहुँचाकर प्रो० दुलारे का पत्ता कटवाने की बात उठाई। किन्तु अधिकतर छात्रों ने इस बात का विरोध किया। व इतने बढिया चुटक्लेबाज़ प्रोफेसर को किसी भी कीमत पर खोना नही चाहते थे। प्रो० दुलारे के दो तीन साथियों ने उसे जेन्यूः फिलासफर' घोषित कर दिया। जबकि बाकियों ने उसके बाल बच्चों पर रहम खाकर उसे उसके हाल पर छोड दिया।

सो इस प्रकार मामला ज्यों का त्यों जमा हुआ था। कोई भी लडका

कोई भी लडकी कुछ भी हो प्रो० दुलारे का पीरियड मिस नही करते थे।

इस सबके बावजूद एक दिन दो लेक्चरर तथा तीन छात्रों ने मिलकर प्रो० दुलारे के खिलाफ प्रिन्सिपल से शिकायत कर दी—"परीक्षाएँ सर पर हैं। कॉलेज की बदनामी ।"

"दिमाग को ताक पर रख दो तो और बात है वरन् पूरे कॉलेज को प्रो० दुलारे पर गर्व होना चाहिए। वह एक महान् दार्शनिक हैं।"

"मगर सर कोर्स पूरा का पूरा छूटा जा रहा है।" एक विद्यार्थी ने स्वर को बहुत सँभालते हुए अपने पढाकू होने का यकीन दिलाया।

"च च, खाक इम्तहान पास करोगे," प्रिन्सिपल ने गम्भीरता से खेद प्रकट किया "कोर्स तो कोर्स ही है। मगर जीवन जीवन है। जाओ प्रो० दुलारे के एक-एक शब्द के सार को समझने की कोशिश करो। तुम्हारा जीवन सार्थक हो जाएगा।"

पाँचों जने एक दूसरे की आँखों में झाँकने लगे। तब एक लेक्चरर ने कुछ कहने के लिए मुँह गोल बनाया। उसके कुछ कहने से पहले प्रिन्सिपल ने डाँट के स्वर में कहा, "अपनी कमजोरियों की तरफ ध्यान दो," मुँह गोल का गोल बना रह गया।

वे अपनी कमजोरियों और प्रिंसिपल के रोबीले चेहरे और सामर्थ्य के विषय में सोचते हुए बाहर निकले। पाँच मैली सूरतें देखकर इन्तज़ार में खडे सैकडों छात्र चहक उठे। पाँचों ने खिसियानी शक्ल में अपनी पेश न जाने के कारणों का स्पष्टीकरण देना शुरू कर दिया।

"प्रिंसिपल की मिनिस्टरों तक पहुँच है।"

"प्रो० दुलारे हर रोज प्रिंसिपल को चाय पिलाता है।"

"नही मुझे तो ऐसा लगता है। प्रिंसिपल प्रोफेसर की जूठी चाय पीने लगा है।"

दूसरे दिन फिर बडे जोश खराश के साथ दुलारे साहब क्लास ले रहे थे "एक होता है विश्वास और एक होता है विश्वासघात—तुम क्या करना पसन्द करोगे?"

"विश्वासघात!" बहुत ज़ोर का शोर हाल के ऊँचे रोशनदानों को पार करता हुआ आसमान तक जा पहुँचा।

शाबाश! शाबाश!! मैं समझता हूँ। अब तुम प्रेक्टिकल लाइफ को समझने लायक हो चले हो। हम आगे बढ़ें। देखो, विश्वासघात दो शब्दों से मिलकर बना है। इसमें वैसे ही विश्वास की तुलना में अधिक वज़न है। विश्वास करने वाला हर सूरत से रोएगा। विश्वासघाती क्यों प्रशसनीय है—इसलिए कि उसकी बुद्धि हर समय समग्र रूप से जागरूक रहती है। कच्ची ढीली बुद्धिवाला व्यक्ति विश्वास करके उत्तरदायित्व से पिण्ड छुड़ाना चाहता है। अहमक या घोंचू के पास विश्वास करने के सिवाय और कोई चारा नहीं होता। यह उसकी मजबूरी है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ—विश्वास मजबूरी का पर्याय है। तो रट लो विश्वास = मजबूरी।"

इस दिन के बाद यह शोर मच गया—प्रो० दुलारे नीति शास्त्र पढाने की बजाय अनैतिकता के उपदेश देने लग गया है। वह पागल कदापि नहीं। ध्वसवादी अवश्य हो सकता है। अगर ऊँचे स्तर पर उसके भाषणों का प्रसार हो, तो देश लुढक जाए।

स्पष्ट था—शोर दूर दूर तक पहुँचा।

बहुत लोगों के अनुरोध पर एक दिन प्रिंसिपल ने एक आम सभा में प्रो० दुलारे के भाषण का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया।

कॉलेज के मैदान में बहुत भीड थी। प्रो० दुलारे बोल रहा था आप सब अपने अपने दिल पर हाथ रखकर सचाई टटोलो। सोचो—आज हर व्यक्ति क्या चाहता है? क्या चाहता है? इस प्रश्न को छ सात मरतबा दोहरा जाओ। फिर अपने कान खीचकर सुनने की कोशिश करो। कुछ उत्तर मिलता है? मेरे मेहरबान साथियो। आप यकीन रखें। आपको कोई भी उत्तर नही मिलेगा बल्कि होगा यह कि बार बार प्रश्न को दोहराने पर आप स्वय उत्तर पाने का ख्याल तक भूल जाएंगे। एक प्रश्न सैकडों प्रश्नों को जन्म दे देगा।"

"फिर?" किसी भावुक श्रोता ने पिन ड्रॉप साइलेंस तोडी।

"फिर क्या! हर मोटा भारी और ठोस प्रश्न हल्का पडना शुरू हो जाएगा और उडने लगेगा। थोडी ही देर में फैलकर आकाश में चिपकने लगेगा। तब आप एकटक देखते रह जाएंगे। धुन्ध! धुन्ध!! धुन्ध!!!" इतना कहकर प्रो० दुलारे सबकी तरफ देखकर जोर जोर से हँसने लगा—"प्रश्न उर्फ धुन्ध।"

इस हँसी से प्राय सबने अपने को अपमानित अनुभव किया, "क्या आप हमारा मज़ाक उडा रहे हैं?" एक श्रोता से न रहा गया।

"तुम किसी सीमा तक दानिशमद मालूम होते हो। मगर सब्र करो। मैं यह सिद्ध करने की कोशिश करूँगा। धुन्ध की उत्पत्ति का कारण प्रश्न कैसे है। गिलहरी की पीठ की रेखाएँ यदि रामचन्द्रजी की अगुलियों की छाप हो सकती है और यदि चमगादड के रात को घर से निकलने के पीछे, पशु तथा पक्षियों के युद्ध का इतिहास हो सकता है—और चन्द्रमा के काले धब्बे राक्षस तब धुन्ध का कारण, प्रश्न क्यों नहीं है?"

"आप आखिर कहना क्या चाहते हैं?" एक श्रोता चिल्लाया।

"अपने दिल से पूछो।"

"यही न कि आज हमें शब्दों से बहलाया जा रहा है।"

"हाँ, तुम भी दानिशमद हो। कागज़ को गोल काटकर रोटी कहा जा सकता है। या यह कि बार बार यह सुनने पर कि कल को, आज की बडी बडी योजनाओं के अन्तर्गत बनने वाली नदियों का पानी अमृत बन जाएगा। हम सब, भूख प्यास से मरने वाले अपने रिश्तेदारों का इन्तजार करने लगेंगे।"

"हर शब्द अपना अर्थ खो चुका है। हमसे झूठे वायदे किए गए हैं।" एक श्रोता ने गला फाडकर कहा।

"शाबाश तीसरे दानिशमद!"

तीनों दानिशमदों ने प्रोफेसर साहब को विचार विमर्श के लिए आमन्त्रित किया। विषय में रुचि होने के कारण प्रिंसिपल साहब भी साथ हो लिए। थोडी दूर चलने पर वे बोले "हमें पहले ही शक था। हम तीनों इन्टेलिजेंस इस्पेक्टर हैं। आपको रंगे हाथों पकडने का हमारा ही प्लान था। आप बच्चों की जिन्दगी से खेल रहे है। देश में बगावत लाना चाहते हैं ।"

"कानून के शिकजे में किसी को रगडा जा सकता है। यह मैं मानता हूँ। साथ ही मुझे यकीन है। आप तीनों दानिशमद मेरे इस विचार से सहमत होंगे कि रिश्वत एक निहायत खूबसूरत तन्दुरुस्त नौजवान लडकी है।" इस पर तीनों इन्स्पेक्टर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। प्रो० दुलारे ने तपाक से पैंट की जेब में हाथ डालकर तीन बडी साइज के नोट निकालकर उनकी तरफ

बढा दिए। तीनों इन्स्पेक्टर सलाम मारते हुए अपने रास्ते चले गए।

तकरीबन बारह दिन बाद प्रिंसिपल ने प्रो० दुलारे से खेद प्रकट किया मैं अब तक तुम्हारे तीनों नोट वापस करा देता। मगर वे तीनों नकली इन्स्पेक्टर थे।"

"तो मैंने सालों को कौन से असली नोट थमा दिए थे।" प्रो० दुलारे हँसी दबाते हुए बोला, "कोई भी शरीफ आदमी राह चलते खूबसूरत नौजवाँ लडकी से सकुचाया रहता है—उसका घूँघट तो घर जाकर ही ' वाक्य अधूरा छोडकर वह ज़ोर से हँसने लगा। • •

स्काई-लैब

स्काई लैब पृथ्वी की कक्षा में नही आया था। अभी कुछ दिन बाकी थे। किन्तु उन्हें लगा उसका आतक अभी से आसमान से उतरने लगा है। धीरे धीरे हिमकणों की तरह चारों दिशाओं में फैल फैलकर अपना घनत्व स्थापित करता चला जा रहा है।

कभी कभी तो ऐसा लगने लगता स्काई लैब पृथ्वी से नही अपितु उनके दिमाग के चारों ओर चक्कर लगा रहा है।

एक दफा तो उनके दिल में आया कि आज दुकान ही न खोलें। बस घर पर ही पडे रहें। उन्होंने ऐसा किया भी। कुछ समय तक वे अपने बडे पलग पर निढाल अवस्था में गाव तकिये से सटे रहे। लेकिन इस हालत में और भी बुरे बुरे विचार प्रवेश करने लगे। उन्हें कभी अखबार देखने, रेडियो सुनने का समय नही मिल पाता था। किन्तु इन दिनों बाकायदा अखबार देखने लगे थे। कोई वसीयत लिख रहा है। कोई विदेश चले जाने के कार्यक्रम बना रहा है। कोई दान पुन, हवन कर रहा है। या तावीज़ बाँध रहा है। क्या पता जिसके नाम वसीयत लिखी जाए वही। एक विचार दूसरे विचार को दबाकर ऊपर आ जाता तो तीसरा उससे भी ऊपर छा जाता। इस तरह बेचैनी बढ चली तो उन्हें लगा, घर पर पडे रहने का निर्णय ठीक नहीं रहा।

तभी एक नौकर दुकान की चाबी माँगने आ गया।

उसके अभिवादन का उत्तर वे ठीक से नही दे सके। मेज़ पर रखे चाबियों के गुच्छे की ओर इशारा भर कर दिया और उठकर बैठ गए।

नौकर के दुकान तक पहुँचते न पहुँचते वे स्वय भी दुकान पर पहुँच गए।

एक नौकर दुकान को झाड पोंछ रहा था। दूसरा सामान बाहर निकाल निकालकर सजा रहा था।

वे बडे अन्यमनस्क भाव से खडे रहे। आसमान को देखते। प्रतिदिन की भाँति नौकरों को कोई भी निर्देश नही दे रहे थे।

साथ के दुकानदारों से औपचारिक जय राम जी की का आदान प्रदान किया। फिर अपनी गद्दी पर आकर बैठ गए।

कुछ देर तक कोई ग्राहक नही आया तो उन्होंने सोचा कि आज कोई भी ग्राहक नही आएगा। कल भी नही आएगा। परसों भी नही। 12 जुलाई तक । अगर कही सचमुच अमेरिकी अन्तरिक्ष प्रयोगशाला का मलबा उन्ही के इलाके पर आ गिरा तो फिर कभी भी कोई ग्राहक नही आएगा।

इस सोच के साथ उनका दिल फिर से बैठने लगा। दूर से दो चार लोग दुकान की ओर आते दिखाई दिए तो लगा वे सब थके हुए कदम बढा रहे हैं। मुख मलिन हैं। उचाट मन में ऐसे ही घर से निकल कर कुछ खरीदने बाजार तक आ गए हैं। जैसे वे स्वय दुकान पर आ गए है।

देखते ही देखते दुकान के सामने कई ग्राहक छा गए। वे सब जल्दी जल्दी का शोर मचाने लगे। कोई गेहूँ की क्वालिटी पर बहस करने लगा और दूसरी बोरी खुलवाने की जिद्द करने लगा। कोई पुराना हिसाब चुकता करने के लिए उनसे बही खाते खुलवाने लगा।

उनकी स्वय की अगुलियों से फुर्ती गायब है। वे एकदम शिथिल पड गई हैं। नौकर तेजी से काम कर रहे हैं। ग्राहक सामान ले जा रहे हैं। वे सोचते हैं यह सब नाटक है। सकट से ध्यान हटाने के लिए सब अपने आपको बहका रहे हैं। कितनी दयनीय स्थिति है।

एकबारगी उनके सम्मुख रामप्यारे का दीन हीन चेहरा घूम गया जिसे उन्होंने महीने भर पहले अचानक ही निकाल दिया था। ओह उन्होंने उसे बिना कसूर निकाल कर उसके साथ ज्यादती की थी। बाकी के नौकरों के साथ ज्यादती की थी। उन पर अपने काम के साथ साथ रामप्यारे के काम भी आ पडे थे। रामप्यारे की जरूरत तो उन्हें थी। मगर वे तो आए दिन अपनी लाभराशि बढाने की कोई न कोई योजना सोचते हैं। फिर अपने हिसाब से कोई शुभ मुहूर्त देखकर उसे कार्यान्वित कर डालते हैं।

कितनी ही देर तक रामप्यारे उनकी मिन्नतें करता रहा था—"हुजूर, सवेरे पहले आपके घर की हाजरी भरता हूँ। फिर दुकान का काम सँभालता हूँ। रात को जो सामान, आप कहते हैं आपके यहाँ पहुँचाकर ही अपने घर जाता हूँ। फिर भी मेरी सेवा में कोई कमी रह गई हो तो हुजूर बता दें।"

रामप्यारे की जबान में जो सच्चाई थी या विनयभाव था उससे वे कहीं द्रवित न हो जाएँ। इसलिए उन्होंने जल्दी जल्दी बडे रूखेपन से उत्तर दिया था—

"जितने आदमियों की हमें ज़रूरत न हो उतने हम कैसे रख सकते हैं? तुम खुद देख रहे हो। कैसी मन्दी चल रही है।"

"मैं पण्डित आदमी हूँ। मुझे नहीं निकालिए सेठजी। बच्चे दुआएँ देंगे।"

"तो पण्डितजी जाकर पण्डिताई करो ना। मेरा सिर क्यों चाटे चले जा रहे हो?" उन्होंने बहुत कडाई से यही दो वाक्य उस पर पटके थे तब कहा जाकर रामप्यारे ने उनका पीछा छोडा था।

उसने खुद तो पीछा छोड दिया था। किन्तु जाते जाते उनका पीछा करने के लिए स्काई लैब छोडता गया था।

उसी शाम रामप्यारे का एक मित्र कुछ अनाज खरीदने आया था। उसी ने तो पहले पहल उन्हें स्काई लैब के पृथ्वी पर शीघ्र गिरने का समाचार दिया था। उसके कई एक दुष्परिणामों की गिनती कराने लगा था। जिन्हें सुनते सुनते वे खौफ खा गए थे।

स्काई लैब के गिरने के दिन ज्यों ज्यों निकट आते जा रहे थे उनकी मनोदशा डाँवाडोल होती चली जा रही थी। कुछ भी न भाता था। न घर वाले। न खाना पीना। पाठ पूजा करते जरूर थे पर मन वहाँ टिकता नही था। हाँ अगर कहीं कोई स्काई लैब की चर्चा कर रहा होगा तो उसे बडे गौर से सुनते। सुनने के बाद मनोबल एक सीढी और नीचे आ गिरता।

इस वक्त एक ग्राहक दूसरे ग्राहक से कह रहा था—

"तुमने क्या सोचा है? ओमजी ने तो अपनी फेमिली को दिल्ली भेज दिया है।"

"कोई बेशक अनुमानों पर भरोसा करे किन्तु इस तथ्य को नही भूलना

चाहिए कि रूसी उपग्रह का मलवा अनुमानित स्थान से एक हजार किलोमीटर दूर जा गिरा था।

"मुझे तो अपने रेडियो पर भरोसा है। कुछ नहीं होने का।"

एक तीसरा ग्राहक कह रहा था—"जिस स्काई लैब को अन्तरिक्ष में भेजने के लिए अमेरिका ने करोड़ों डालर खर्च किए उसे नष्ट करने के लिए मात्र एक करोड डालर की कजूसी कर गया।"

"उनकी बला से" साथ का दुकानदार भी उनमें आ शामिल हुआ, "वे तो कटिबद्ध हैं कि मलबा कहीं भी गिरे अमेरिका पर नहीं गिरने देंगे। प्रसाद बाँटूं अगर उन्ही पर गिरे।"

"खूब साहब क्या कहने। पाप युग जो आ गया है।" एक बूढे ने अपनी धोती से हाथ झाडते हुए कहा "किसी तरह इस धरती का विनाश तो होना ही है।"

"अजी विनाश कैसे होगा?" इतने में भगवे कपडे पहने एक साधु दिखाई दिया। सबको लक्ष्य कर बोला—"आप सब लोग चलकर देखिए ना। लखनऊ वाले ऋषिजी के एक परम प्रिय बडे शिष्य हैं। उन्होंने हमारे गाँव में अग्नि प्रज्वलित कर रखी है।" अब भारत की पावन भूमि पर तो प्रयोगशाला कतई नही गिरने देंगे। बहुत बडा काम है। खूब चर्चा हो रहा है। आप सब महानुभाव भी दिल खोलकर चन्दा दीजिए। उसने बडे झोले में से रसीद बुक निकाली और आस पास खडे लोगों से चन्दा वसूल करने लगा।

दो एक आदमी यह कहते हुए कि हमारा इन सब पर विश्वास नही है, पीछे हट गए।

जब सेठजी ने पाँच रुपए का नोट देना चाहा तो वह साधु पीछे हट गया— ऐसे नही सेठजी आप बडे बडे लखपतियों के सहारे ही तो यह पुनीत यज्ञ सम्पन्न हो रहा है। आप तो स्वय ही वहाँ पहुँचकर दर्शन दीजिए और जो श्रद्धा हो वहीं घोषणा कीजिए। चार भाई और सुनें। उत्साह बढे।"

क्यों नही क्यों नही? हम सब सेठजी को लेकर ऋषिजी के दर्शन करेंगे। सेठजी के कुछ परिचितों ने हामी भरी।

× × ×

दूसरे दिन सुबह तडके वे यज्ञ स्थल की ओर जा रहे थे। बहुत दूर से ही उन्हें लाउड स्पीकरों से मन्त्रोच्चारण की गूँज सुनाई दी। पूरा वातावरण डोलता सा प्रतीत हुआ। पूरा आकाश धुएँ से आच्छादित था। उनका दिल कुछ धक् धक्-सा करने लगा।

दूर दूर तक पण्डाल लगे हुए थे। दरियाँ बिछी हुई थीं। जाने किन किन गाँवों और शहरों की भीड यहाँ उमडी आ रही थी।

एक छोटे कद के साधु ने हाथ जोडकर उनकी अगवानी की और ऋषि जी के निकट जहाँ पहले से शहर के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति बैठे थे बिठाया।

बहुत देर तक आहुतियाँ चढती रही। मन्त्र पढ पढकर उनके अर्थ बताए गए। फिर नश्वर शरीर और भगवान् की महिमा पर प्रवचन हुए। अन्त में ऋषि महाराज ने स्वय बताया कि इस यज्ञ के द्वारा वे इस धरा के समस्त कष्टों को हर लेंगे। इससे देवता प्रसन्न होंगे। मानव जाति विनाश अकाल एव मृत्यु के गर्त में जाने से अवश्य बच जाएगी। इसके बाद उन्होंने समझाया कि अभी इस महायज्ञ की अग्नि को 13, 14 जुलाई तक प्रज्वलित रखना है और यह कोई साधारण कार्य नही है। महँगाई का जमाना है। इसके लिए बहुत सा धन अपेक्षित है।

ऋषिजी मौन हो गए तो बारी बारी से लोगों ने धन चढाया। सेठजी के साथ बैठे व्यापारियों ने पाँच पाँच हजार रुपए देने की घोषणा की तो वे कुछ देर तक सकोच में पड गए। फिर जैसे सोचा हो, कल का क्या भरोसा। सौदा महँगा नही है। उन्होंने भी पाँच हजार देने का वचन दे दिया।

× × ×

वहाँ से चलने लगे तो उसी छोटे कद वाले साधु ने विदाई दी। कुछ कदम साथ चला। गेरुए कपडों, बडे बडे तिलक, चन्दन के लेप के बीच से उन्होंने पहचान ही लिया। यह रामप्यारे था।

अरे तुम यहाँ ?" वे चौंके थे।

"कुछ तो करना ही था। सोचा आप ही का आदेश क्यों न पालन करूँ। सो पण्डिताई करने लगा।

वे कुछ ग्लानि से भर उठे "नही नही जब चाहो हमारा दरवाजा

है, रामप्यारे।"

"अभी तो दिन बहुत अच्छे निकल रहे हैं। यहाँ मन्दी नहीं है। चाहता तो यही था, हाथ पैर हिलाकर पसीने की कमाई खाऊँ खैर ।" किसी के बुलाने पर वह लौट गया।

रास्ते में उन्हें बड़ा अटपटा सा लग रहा था। मुँह का स्वाद कसैला हो आया था। रह रहकर उन्हें पाँच हजार का ध्यान आ रहा था। पाँच हजार में वे रामप्यारे को कई सालों तक तनख्वाह दे सकते थे। पाँच हजार की पूँजी कम नहीं होती। पाँच हजार में कितना गेहूँ आ सकता है। हल्दी मटर चने की बोरियों में कितना वजन होता है।

उन्हें लगा, उनके हाथों से इतनी सारी भरी भराई बोरियाँ एक साथ छूटकर उड गई हैं। फिर उन्हीं पर गिर रही हैं। वे देखते जा रहे हैं। चरमरा रहे हैं। शायद आज ही कोई स्काई लैब आ गिरा है उन पर। • •

एक डिरेलमेन्ट और

एक्सीडन्ट साइट से सुदेशजी खाली हाथ लौटे थे। इस पर ट्रक ड्राइवर का भाड़ा अभी देना था। साथ में ट्रक मालिक के चार सौ रुपए भी बकाया थे। इस समय तो वे केवल दोनों लड़कों का मेहनताना ही जैसे तैसे अदा कर सके थे।

फल, नमकीन और मिठाई कुछ तो यूँ ही इधर-उधर बाँटनी पड़ी थी। बाकी सामान थैलों में भरकर पैदल ही घर की तरफ चल दिए थे।

किस ठाठ से वे स्टेशन पर ताँगे में सवार होकर किसी बड़े नेता की तरह पहुँचे थे और अब किस फटे हाल वापस घर की ओर जा रहे थे। सब कुछ इस बुरी तरह से बिगड़कर रह जाएगा, उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। कल्पना न कर पाने के पीछे स्पष्ट एवं ठोस कारण थे।

सुदेशजी बातें बनाने में बहुत दूर दूर तक प्रसिद्ध हो चले थे। उन्हें मन ही मन विश्वास होने लगा था कि जरूर एक दिन उनकी यह वाक् पटुता और समझदारी एक खालिस धन्धे की शक्ल अख्तियार कर लेगी। रंग तो अभी से आना शुरू हो गया था। "सुदेशजी, सुदेश जी" करते हुए लोग बाग उन्हें घेरे ही रहते। अपने उलझे और अटके हुए कामों को ठीक कराने के लिए सुदेशजी को साथ ले जाते—चाय पानी से उनकी खातिरदारी करते।

सुदेशजी में विशेषता थी बात करने की। बात बनाने की। बहुत आगे की बात सोच जाने की। झूठ को सच साबित करने की। सामने वाले को धमकी देकर दूसरे ही क्षण ज़रूरत पड़ने पर मधुर हास्य बिखेर देने में उनकी मास्टरी थी। हर महकमे के ऊँचे ओहदेदारों के नाम उन्हें रटे हुए थे जो वक्त ज़रूरत आप से आप उनकी ज़ुबान से फूट निकलते थे।

अपने बढते हुए महत्त्व को वे बहुत ऊँचा आँकने लगे थे। यहाँ तक कि अपने खास दोस्तों से भी बेरुखी से पेश आने लगे थे। सोचते, जिसको गर्ज होगी—सौ दफा चक्कर काटेगा। अब वे धीरे धीरे लोगों से 'फीस' भी लेने लगे थे। वे अजहद मौका शनाश थे। इस तरह बिना वकालत पास किए वे अपने आपको किसी नामी वकील से कम नही समझते। साथ ही साथ वे अपने को एक बडा नेता भी मानने लगे थे।

कितने ही दिनों की मिन्नत समाजत करवाने के बाद आज सुदेशजी झीनामल के साथ उसके गाँव चलने को राजी हुए थे। गाडी चार बजे छूटती थी। झीनामल तीन बजे ही सुदेशजी का बिस्तर बन्द और अटैची उठा ले गया।

ठीक पौने चार बजे साहबी ठाट बाट प्रदर्शित करते हुए सुदेशजी ताँगे में सवार हुए। स्टेशन पर झीनामल पहले से ही टिकटें लिए प्रतीक्षा कर रहा था।

सवा चार बज गए लेकिन गाडी का कही पता ठिकाना नहीं था। लोग बार बार प्लेटफार्म के किनारे झुक-झुककर गाडी की टोह लेते और उनके मुँह से हर बार एक आह की तरह यही शब्द सुनाई पडते—भई—अभी तो सिगनल ही डाउन नही हुआ।

तब सुदेश जी ए० एस० एस० के कमरे में जा घुसे।

"स्टेशन मास्टर साहब," उन्होंने घडघडाती हुई ऊँची आवाज निकाली "गाडी क्यों नही आई ?"

"रास्ते में डिरेलमेन्ट हो गया है।" ए० एस० एस० ने शीघ्रता से उत्तर दिया और कन्ट्रोल फोन पर बात करने लगा। "हाँ तो कितनी देर में सेक्शन रेस्टोर हो जाने की सम्भावना है ? हूँ।

सुदेशजी देख रहे थे स्टेशन मास्टर बहुत व्यस्त है। परन्तु वे उनसे बार बार सवाल जवाब कर उन्हें टोकते रहे। जब ए० एस० एस० ने उन्हें बताया कि गाडी ढाई घन्टे तक आएगी तो वे झल्ला पडे "क्या मज़ाक है। हम कम्प्लेन्ट करेंगे।"

"कम्प्लैन्ट करने से रोकना हमारे नियमों के विरुद्ध है। हम आपको भी रोकेंगे नहीं। आप पूरी बात तो सुन लें। इस केस में हो सकता है कि गाडी

जल्दी

ए० एस० एस० बडी विनम्रता से स्थिति समझाना चाहता था, किन्तु सुदेशजी ने पूरी बात सुनी नही। गरजते हुए, "हम देख लेंगे। सब देख लेंगे। जब डिरेलमेन्ट हुआ है तो चार पाँच घन्टे से पहले क्या आएगी" कमरे से बाहर निकल आए।

दो एक मिनट वे प्लेटफार्म पर खडे रहे। उन्हें अपने शब्दों में जान लगी—गाडी चार पाँच घन्टे से भी ज्यादा लेट हो सकती है। आखिर डिरेलमेन्ट हुआ है।

वे शीघ्रता से झीनामल के पास पहुँचे और रौब से बोले "मेरा टिकट वापस कर दो। मैं तुम्हारे साथ नही जाऊँगा।"

सुनकर झीनामल हक्का बक्का रह गया। फिर विनती के स्वर में बोला "भाइ साहब क्या फर्क पडता है। गाडी चाहे जितनी लेट पहुँचे। मेरा काम तो कल ही होना है।"

"मैं तुझ अकले का काम देखूँ या मुसीबत में फँसे हजारों लोगों का उद्धार करूँ।"

"भाई साहब झीलामल फिर गिडगिडाते हुए बोला "कितने दिनों से आपके इन्तजार में बैठा रहा। फिर जाने कब छुट्टी मिले ।"

"मैंने कह दिया ना। तुम जानो तुम्हारा काम। मैं तुमसे कोई फीस नही लूँगा। और यह सँभालो अपने पैसे जो तुमने जेबखर्च के लिए दिए थे।" पैसे पटकते हुए वे स्टेशन से बाहर आ गए।

स्टेशन क निकट सुदेशजी ने एक ट्रक एजेंसी स बात की। दो लडकों को पकडा। फल नमकीन मिठाई पर तकरीबन सौ रुपए खर्च किए।

यह सब दौड धूप कर चुकने और एक्सीडेन्ट साइट पर पहुँचने में उन्हें डेढ घन्टा लग गया। देखा वहाँ पर एक गैंग काम कर रही है। असल में काम पूरा हो गया था। मगर सुदेशजी सही स्थिति से अनभिज्ञ थे।

गर्मी के दिन थे। कुछ लोग अब भी गाडी के बाहर हवा खाने के लिए बैठे थे। और कुछ इधर उधर टहल रहे थे।

सुदेशजी ने गर्दन ऊँची तानी। उन्हें ध्यान आया कि वह एक अच्छे वक्ता भी हैं। फुर्ती से एक ऊँचे पत्थर पर खडे होकर लेक्चर झाडने लगे।

"गाड़ियों का क्या भरोसा कब कहाँ बैठ जाएँ—इसी गाड़ी को ही लीजिए। इसे अब चलनी है। जिन भाइयों को शहर पहुँचना है या जंक्शन पहुँचकर आगे की गाड़ी पकड़नी है उन सब मेहरबानों के लिए हमारा ट्रक हाजिर है। हम सरकार सेवक हैं। देखिए पैसा पेश करने की जरूरत नहीं है जितनी बार जरूरत होगी हम चक्कर लगाते रहेंगे [illegible] उन्होंने मजदूरों को इशारा किया कि असबाब सामान पीछे भेजनी शुरू कर दें।

परन्तु यह क्या? इंजन ने तो चलने की विसिल दे दी थी। [illegible] [illegible]। [illegible] बड़ा [illegible] मैं चलने से पहले चुके थे अब बाकी लोग भी बिना कुछ सोचे [illegible], और [illegible] उतरकर गाड़ी में सवार हो गए।

देखते ही देखते गाड़ी चल दी। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

तर्ज़ में पुकारा—"भाशाहो हुण बैठ जाओ। राम भला करेंगे।"

ट्रक चला पडा। सुदेशजी ड्राइवर के साथ की सीट पर बैठे खिडकी से झाँक रहे थे। बाहर उन्हें जैसे कुछ भी नजर नही आ रहा था। उनकी आँखों के सामने झीनामल ट्रक गाडी पैसेंजर आदि बार बार आकर गडमड हो रहे थे।

जब वे घर की ओर लौट रहे थे तब भी उनकी बिल्कुल यही स्थिति थी। झीनामल ओह, वह भी धोखा खाने से बच गया। पैसेंजर भी नुक्सान उठाने से बच निकले। बस वे ही धोखा खा गए। बहुत बडा धोखा।

सिर बुरी तरह से भारी हो गया था। कदम रह रहकर लडखडा जाते। एक बार तो इतनी जोर का चक्कर आया कि वे सँभलते न सँभलते फुटपाथ से नीचे आ रहे।

तब उन्हें लगा उनका अपना ही डिरेलमेन्ट हो गया है। • •

नजर का इलाज

सुरेश आँखें खोले लेटा हुआ था। उसका शरीर बुरी तरह से टूट रहा था। जैसे सारी रात शारीरिक एव मानसिक श्रम एक साथ करता रहा हो।

पत्नी निकट आई और पूछा—"आज उठने की सलाह नही है क्या?

"चाय" बडे ढीलेपन से उसने मुँह में से शब्द निकाला और पुन विचार मग्न हो गया।

रात उसने भयकर मन दहलाने वाला स्वप्न देखा था, उसी से आक्रान्त अब तक उसी विषय पर सोच रहा था। वह पत्नी का पीछा कर रहा है। वह बार बार गायब हो जाती है।

पत्नी चाय लेकर आई तो उसने पूछा—"अखबार तो आ गया होगा?"

"पहले चाय तो पी लो फिर ला देती हूँ।"

"ले तो आओ बाद में देख लूँगा।"

जैसे ही रेखा अखबार लाई वह चाय छोड उस पर झपटा जैसे उसे अपने स्वप्न सम्बन्धी समाचार आने की आशा हो। "यह रहा यह" उसने रेखा को घूरते हुए कहा "देखो तीन बच्चों की माँ पति को धोखा देकर अपने प्रेमी के साथ भाग गई।"

"इसीलिए अखबार नही लाती थी। तुम्हारी बीमारी का क्या इलाज है? हर रोज सनसनीखेज खबरें ही ढूँढ निकालने का उतावलपन तुम पर सवार रहता है।

उसने पत्नी के कहने पर कुछ ध्यान नही दिया। अखबार पर आँखें और गडा दी। "छोडो यह तो हर रोज़ होता ही रहता है। चाय खत्म करो।

वह चाय पीने लगा। साथ ही सन्देहात्मक दृष्टि से रेखा को घूरने लगा।

जैसे जाँच रहा हो—वह यूँ ही, यह सब कह रही है अथवा केवल बात टालना चाहती है।

जब वह छोटा था, तभी से वह त्रिया चरित्र मन के अचानक 'डोल उठने के किस्से सुनता आया है। और अब तक जहाँ कही इस प्रकार की बातें हो रही हों—बडे गौर से सुनता है। और फिर उन तमाम बातों को फैला फैला कर एक विस्तृत धरातल तैयार करता है। उसके मध्य पत्नी को बैठा देता है। उसके चारों ओर घूम घूमकर उसे घूरता है। जाँच पडताल के लहजे में प्रश्नों की झडी लगा देता है। मगर जानबूझकर बडे भोले स्वर में—"मेरे घर आने से पहले कितनी देर से दहलीज पर बैठी थी रेखा? क्या रजनीश इसी रास्ते से बाजार जाता है? मिसेज साहू तुम्हें हर रोज क्यों बुलाती है? उनके भाई की कितनी आयु होगी? तुम्हें लता के मुकाबले रफी के गाने ही क्यों पसन्द हैं???????"

उसे अपनी परख से फिर भी सन्तोष नही होता। तब वह अपने आपको किसी प्रकार आश्वस्त करने हेतु एक रास्ता निकाल लेता है। अपने को मनोवैज्ञानिक की तथा पत्नी को सती साध्वी सावित्री सीता आदि आदि की उपाधियाँ बाँटने लगता है।

मुश्किल से आधा कप चाय खत्म हुई होगी कि उसने दुबारा बात पकडते हुए समाचार पर अगुली रख दी—अपने पति को जहर देकर अपने प्रेमी के साथ भाग गई।

"तुम हर रात ऐसे सपने देखा करोगे। और हर रोज अखबारों में ऐसे समाचार आया करेंगे। मुझे तो बस हर समय तुम्हारी चिन्ता रहने लगी है। तुम अपना इलाज कराओ।" रेखा क्रुद्ध कर बोली, "मैं हर वक्त इस तरह की बातें सहन नही कर सकती साफ-साफ कहो आखिर तुम्हारा मतलब क्या है?"

"मतलब वतलब कुछ नही—मतलब खैर छोडो मतलब—यही कि वे सब भी पत्नियाँ हैं—पति प्रिया। उन पर उनके पतियों का विश्वास रहता ही होगा। और वे "

"दिनो दिन तुम्हारे दिमाग में न जाने क्या भरता जा रहा है। हे भगवान्, तुम्हारा इलाज लाजमी है "।" रेखा के अस्पष्ट से शब्द इधर-उधर बिखर

जाते हैं। इन शब्दों में चिन्ता खिजलाहट व्यग्य सब कुछ घुला मिला है।

"भला ऐसे शब्दों का क्या उत्तर हो सकता है" वह सोचता रहता है। रेखा एडियाँ रगडती हुई दूसरे कमरे में चली जाती है। वह मात्र रेखा के अस्तित्व को परखता रह जाता है। दृष्टि में सन्देह का कोण और उभर आता है।

दूसरे कमरे से रेखा के गुनगुनाने की आवाज आ रही है। उसे लगता है, किसी नई फिल्मी धुन के साथ रेखा के पाँव भी थिरक रहे हैं। शायद वह जता रही है कि उसे उसकी जरा भी परवाह नही। उसे बना रही है कि वह उस पर रत्ती भर भी सन्देह न कर सके।

तब वह मन ही मन फैसला करता है अपनी दृष्टि को अधिक से अधिक पैना कर लेने का। साथ में यह भी कि वह कभी भी अपने मित्रों का घर पर नही लाएगा। पत्नी को कही अकेला नही भेजेगा बाजार तक नही।

× × ×

इस समय वह अपनी पैनी दृष्टि को बुरी तरह से कोस रहा था।

जैसे ही वह राजाराम कटरा में घुसने लगा था एक व्यक्ति ने उससे समय पूछा था। वह समय बताकर आगे बढने लगा था किन्तु उस व्यक्ति ने उसे रोक लिया था "नरूला बूट हाउस किस तरफ है ?" सुरेश ने खेद प्रकट करते हुए जान छुडानी चाही थी कि नही जानता। इस पर उस व्यक्ति ने कहा "आप मुझे सिर्फ रगीन सिनेमा की साइट समझा दें आगे मैं स्वय ढूँढ लूँगा। सुरेश ने उसे मार्ग समझाया तो वह इस चर्चा पर उतर आया कि आजकल इस शहर में कौन कौन सी पिक्चर्ज चल रही हैं।

इस प्रकार की बकवास में पाँच सात मिनट उलझा रहा। चलते वक्त सुरेश ने उस व्यक्ति के धन्यवाद का उत्तर भी नही दिया। बौखलाहट के मारे मन ही मन उसे पागल कह रहा था। रेखा कब की आगे बढ चुकी थी। उसे इस बात से राहत मिली थी कि रेखा पर पुरुष के सम्मुख नही रुकी थी।

लेकिन अब सारा कटरा तलाश करते करते उसका नाक में दम होने लगा था। रेखा कही पर भी नज़र नही आ रही थी। रह रहकर वह अप्रत्याशित दुश्चिन्ताओं से सिहर उठता। कभी उस आदमी के बारे में सोचता जिसे कुछ देर पहले वह पागल कह रहा था—और फिर अब अपने

आपको ही पागल समझने लगा था।

तभी उसे कही निकट से मुन्ने के रोने की आवाज सुनाई दी। मुन्ने के हाथ में छ सात चाकलेट थीं। वह रो भी रहा था, और चाकलेट भी खा रहा था। सुरेश ने झट से उसे छाती से लगा लिया और गाल सहलाते हुए पूछा "मम्मी कहाँ हैं ?"

"उधर" मुन्ने ने एक ओर अगुली उठा दी।

वह सोचने लगा प्राय सब ओर वह घूम आया है। अब क्या करे ? घर जाए ? इतने में एक अत्यन्त सुन्दर नवयुवती निकट आ खडी हुई— क्यों साहब यह आपका बच्चा है ? बहुत देर से रो रहा था बेचारा।"

"मगर इसके साथ इसकी मम्मी थी" उसने उडती नजर युवती पर डाली।

युवती अजीब ढग से हँसने लगी—"मगर उसकी मम्मी के साथ कोई अपटुडेट हैंडसम "

"हैं क्या " सुरेश ने चौंकने वाला स्वर निकाला—"किधर गए और आप ?"

"वह सामने वाली दुकान मेरे भाई साहब की है।" एक सर्फ का डिब्बा लेकर उन्होंने कहा—"जरा बच्चे को देखिए हम अभी आए।" जब तक मैं कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करूँ वे दोनों एक दूसरे का हाथ पकडे गायब हो गए।

"बच्चा तब से रो रहा था। शुक्र है आप आ गए "

"कुतिया—तभी आज ठीक पाँच बजे ठीक पाँच बजे राजाराम कटरा कटरा की रट लगा रखी थी " सुरेश ने अपने होंठ काट लिया। मुन्ने को जमीन पर खडा करके इधर-उधर देखने लगा। जैसे फिर से तय कर रहा हो—किधर जाना चाहिए या क्या करना चाहिए।

"क्या मैं आपकी सहायता कर सकती हूँ ?" बडे मधुर स्वर में युवती ने सुरेश पर सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि डालते हुए कहा "मैं आपको बताती हूँ—वे किधर गए हैं। चलिए।" सुरेश ने उसे अच्छी तरह से देखा। उसका स्वर जितना आकर्षक था रूप उससे भी अधिक। वह उसके पीछे पीछे चलने लगा।

करीब आधा घटा सब तरफ चक्कर लगा लेने के बाद युवती सडक के

किनारे रुक गई—"बहुत अजीब बात है। औरत और फिर माँ, ऐसा कर सकती है। अब पुलिस में जाकर रिपोर्ट लिखाइए। नहीं पहले एक बार घर देख आना ज़्यादा बेहतर रहेगा। क्यों?"

"खाक घर गई होगी।" सुरेश माथा पकडकर खडा हो गया।

"आप इस प्रकार पस्त न होइए। आप जैसे नेक आदमी पर तरस आता है। यह सच है यह सदमा असहनीय है किन्तु सब्र खोने से कोई लाभ नही। यही निकट हमारा मकान है। चलिए थोडा सुस्ता लें। मेरे भाई साहब भी आने वाले होंगे। मिलकर सलाह करेंगे।" बडी सरलता से उसने सुरेश का हाथ पकड लिया। सुरेश फिर से उसके पीछे पीछे चलने लगा। मन ही मन, अपनी पत्नी तथा इस युवती के चरित्र का मुकाबला करने लगा।

घर पहुँच कर युवती ने शर्बत तैयार किया। शर्बत पीते समय सुरेश उससे सटकर बैठा रहा। उसके रूप और गुणों को सराहने लगा। उसे बार बार सकुचाई आँखों से देखता और न जाने किस प्रकार के विचारों में खोने लगा। शर्बत पी चुकने के बाद वह उसे शयन कक्ष में ले गई। मुन्ना आँगन में बेबी साइकल चला रहा था।

युवती के अनुरोध पर वह जूते खोलकर पलग पर लेट गया। जब युवती बाहर जाने लगी तो सुरेश ने उसका हाथ पकड लिया— आप कहीं न जाइए। मेरी दशा को आप भली प्रकार जानती हैं।" युवती बिना किसी प्रकार के विरोध के उसके सिरहाने बैठ गई।

"ठीक है ठीक है इस प्रकार मैं अब अपनी कुलटा पत्नी से बदला लूँगा।" फुसफुसाते हुए वह उठ बैठा। और दोनों हाथ युवती के कन्धों पर रख दिए।

अचानक बडे जोर से युवती खाँसने लगी। जैसे उसे खाँसी का दौरा पडता हो। सुरेश उसकी पीठ थपथपाने लगा। उसी समय दरवाज़ा खुला। सुरेश दहशत के मारे पलग से कूद पडा—"तो चिटखनी बन्द नही थी। उसकी निगाह सिर्फ़ दरवाज़े पर टँग कर रह गई।

"उधर नही इधर देखिए" खिलखिलाकर युवती बोली "आप हैं मेरे पति मिस्टर विश्वास और आप हैं मेरी बचपन की चहेती सखी—रेखा।"

"मुझे क्षमा कर दीजिए।" रेखा एकदम सुरेश के निकट खडी हो

गई—"आप श्रीमती शान्ता पी एच० डी०, मनोविज्ञान हैं। हाल ही में अमरीका से लौटी हैं। इनसे आपकी बीमारी का मैंने तो मात्र ज़िक्र किया था। उपचार करने का ठेका इन्होंने आपसे आप ले लिया। मैं मना करती रही। किन्तु यह नही मानी साली का जीजा से मजाक करने का हक जो होता है।" रेखा ने जोर से पति के कन्धे को झटका दिया है। जैसे होश में ला रही हो।

सब जोर जोर से हँस रहे थे—केवल सुरेश को छोडकर। वह सोच रहा था—कौन कितने पानी में है। उसकी निगाह ऊपर ही नही उठ पा रही थी। हालांकि वह यह जानने को उत्सुक था कि रास्ते में उसे रोकने वाला (पागल व्यक्ति कही मि० विश्वास हो तो नही था ?) हो न हो वही होना चाहिए। • •

किनारे रुक गई—"बहुत अजीब बात है। औरत और फिर माँ, ऐसा कर सकती है। अब पुलिस में जाकर रिपोर्ट लिखाइए। नही पहले एक बार घर देख आना ज्यादा बेहतर रहेगा। क्यों ?"

"खाक घर गई होगी।" सुरेश माथा पकडकर खडा हो गया।

"आप इस प्रकार पस्त न होइए। आप जैसे नेक आदमी पर तरस आता है। यह सच है यह सदमा असहनीय है किन्तु सब्र खोने से कोई लाभ नही। यही निकट हमारा मकान है। चलिए थोडा सुस्ता लें। मेरे भाई साहब भी जाने वाले होंगे। मिलकर सलाह करेंगे।" बडी सरलता से उसने सुरेश का हाथ पकड लिया। सुरेश फिर से उसके पीछे पीछे चलने लगा। मन ही मन अपनी पत्नी तथा इस युवती के चरित्र का मुकाबला करने लगा।

घर पहुँच कर युवती ने शर्बत तैयार किया। शर्बत पीते समय सुरेश उससे सटकर बैठा रहा। उसके रूप और गुणों को सराहने लगा। उसे बार बार सकुचाई आँखों से देखता और न जाने किस प्रकार के विचारों में खोने लगा। शर्बत पी चुकने के बाद वह उसे शयन कक्ष में ले गई। मुन्ना आँगन में बेबी साइकल चला रहा था।

युवती के अनुरोध पर वह जूते खोलकर पलग पर लेट गया। जब युवती बाहर जाने लगी तो सुरेश ने उसका हाथ पकड लिया—"आप कही न जाइए। मेरी दशा को आप भली प्रकार जानती हैं।" युवती बिना किसी प्रकार के विरोध के उसके सिरहाने बैठ गई।

"ठीक है ठीक है इस प्रकार मैं अब अपनी कुलटा पत्नी से बदला लूँगा।" फुसफुसाते हुए वह उठ बैठा। और दोनों हाथ युवती के कन्धों पर रख दिए।

अचानक बडे जोर से युवती खाँसने लगी। जैसे उसे खाँसी का दौरा पडता हो। सुरेश उसकी पीठ थपथपाने लगा। उसी समय दरवाजा खुला। सुरेश दहशत के मारे पलग से कूद पडा—"तो चिटखनी बन्द नहीं थी।" उसकी निगाह सिर्फ़ दरवाजे पर टँग कर रह गई।

"उधर नही इधर देखिए" खिलखिलाकर युवती बोली "आप हैं मेरे पति मिस्टर विश्वास और आप हैं मेरी बचपन की चहेती सखी—रेखा।"

"मुझे क्षमा कर दीजिए।" रेखा एकदम सुरेश के निकट खडी हो

गई—"आप श्रीमती शान्ता पी एच० डी०, मनोविज्ञान हैं। हाल ही में अमरीका से लौटी हैं। इनसे आपकी बीमारी का मैंने तो मात्र ज़िक्र किया था। उपचार करने का ठेका इन्होंने आपसे आप ले लिया। मैं मना करती रही। किन्तु यह नही मानी साली का जीजा से मज़ाक करने का हक जो होता है।" रेखा ने जोर से पति के कन्धे को झटका दिया है। जैसे होश में ला रही हो।

सब ज़ोर ज़ोर से हँस रहे थे—केवल सुरेश को छोडकर। वह सोच रहा था—कौन कितने पानी में है। उसकी निगाह ऊपर ही नही उठ पा रही थी। हालाँकि वह यह जानने को उत्सुक था कि रास्ते में उसे रोकने वाला (पागल व्यक्ति कही मि० विश्वास ही तो नही था ?) हो न हो वही होना चाहिए। • •

कलियुग

मुझे जुआ खेलने की प्रेरणा पहले पहल राम से मिली थी । यह बात सही है कि मोहल्ले के कुछ माने हुए लोग राम को घटिया और लोफर किस्म का आदमी कहते हैं। उनका बस चले तो राम को कॉलोनी से ही निकाल दें। उनके विचारानुसार राम के कारण पूरे मोहल्ले की प्रतिष्ठा को खतरा हो गया है। किन्तु मैं डके की चोट से कह सकता हूँ—ऐसी कोई बात नही, बल्कि राम की वजह से पूरा मोहल्ला गए रात तक जगमगाता रहता है। खासी रौनक बनी रहती है। चहलकदमी के कारण चोरियों की वारदातें निहायत कम हो गई हैं। इसलिए मतानुसार उन लोगों के उक्त दृष्टिकोण का कारण मात्र ईर्ष्या है—न खेलेंगे न खेलने देगें।

मैंने राम को सहृदयतापूर्वक समझने की कोशिश की है। उसकी तमाम वर्तमान और भूतपूर्व गतिविधियों का गहनतापूर्वक निरीक्षण एव विश्लेषण किया है। आखिरकार जो नतीजा सामने आया वह यह है कि मैं राम भक्त बन गया हूँ।"

राम स्वय अपनी विशेषताएँ बताने में दक्ष है—न भी बताए तो उसका व्यक्तित्व कोई बन्द किताब नही।

राम अपने को श्री रामचन्द्रजी का प्रतिनिधि बताकर सबका मनोरजन करता है। उसका व्यवहार इतना स्पष्ट एव सपाट है कि उसके विशाल एव खुले स्वभाव का परिचय सहज ही मिल जाता है।

उसने एक अदद बीवी को तिलाजलि दे रखी है। उसके पतिव्रता धर्म पर किसी धोबी वोबी को शक नही था—शक तो उस स्वय ही हुआ था—क्योंकि वह राम को प्राय हर रोज रात को देरी से घर लौटने पर टोकने

लगी थी' मतलब स्पष्ट था—स्त्री को पति के चरित्र में सन्देह साफ जाहिर है—यह मामला मर्यादा पुरुषोत्तम राम के लिए क्योंकर नागवार सिद्ध न होता। जो स्त्री पति के लोकप्रिय बनने में अडचन डाले उसके अमूल्य समय का अपनी मर्जी मुताबिक घर पर बैठाकर शोषण करे, उसके चरित्र पर छींटा कशी करे—वह दोषित है कलंकिनी तथा चरित्रहीन है। अत' त्याज्य है। सो एक काल बीत चुका है राम के सीता को भगा कर सोने की कई सीताओं की पूजा की है ।

कभी कभार भूले भटके उसके मानस पटल पर जब तब सीता की मधुर स्मृति तैरने लगती है तो अपने सुदृढ जीवन मूल्यों को कायम रखने के लिए वह भरी हुई बोतलों से लाठियों का काम लेता है—और उसकी याद को मार फेंकता है।

इस तथ्य से सभी परिचत है कि राम कोई काम धन्धा नही करता—कारण? उसके स्वय के शब्दों में— लक्ष्मी का स्वामी चद सिक्कों के लिए मोहताजी क्यों करे। इतना ही नही कई बार जोश में आकर वह एक सीधी सादी किन्तु आकपक बात भी दोहराता है—"जब जुए में ही इतनी आदमनी हो जाती है तो नौकरी करके अपनी आत्मा का हनन क्यों कराएँ।"

मैंने बडों बडों के मुँह में हाथी के दाँत देखे हैं—उनके टके-टके के लिए झूठे वक्तव्य सुनकर मनुष्यता से विश्वास उठने लगता है। तभी अनायास मेरा ध्यान राम की ओर चला जाता है। जहाँ तक चारित्रिक प्रामाणिकता का प्रश्न है, वह राम में ही खोजी जा सकती है। बस यही कुछ कारण थे मेरे राम पर जी जान से लट्टू होने के। निःसन्देह ऐसे ऊँचे किस्म के आदमी इस दुनिया में इक्के दुक्के ही मिलते हैं।

इसलिए जल्द से जल्द राम का सान्निध्य पाने के लिए जैसे छटपटाने लगा। इसका एक ही इलाज हो सकता था। राम का पक्का चेला बन जाऊँ।

राम के सभी चेलों को मैंने सदा हँसते खेलते मस्ती काटते देखा है। मैं भी ऐसी मस्ती हासिल करने के लिए तरसन लगा— परन्तु जब जब मैं राम के निकट जाने की कोशिश करता राम मुझे बस यूँ ही टाल जाता—मुझे हर बार यही लगता जैसे वह मेरे अस्तित्व को ही नकार रहा है। बडा दुःख होता। जाने क्या कारण था। या तो उसे मेरी भक्ति में सन्देह था, या अपनी

तकदीर खोटी थी। मैं सोचता रहता

जब मुझे अपने नसीब के अरमान पूरे होते नजर न आए तो मुझे अचानक एक तरकीब सूझी—राम के जिन चेलों से मुझे उन दिनों ईर्ष्या हो रही थी उन्ही में से दो को पहले गुरु बनाया—यानी स्टैप बाई स्टैप वाला फार्मूला अख्तियार करना पडा।

यह काम फोकट में सम्पन्न हो गया हो ऐसी बात नहीं थी। उन्हें खिलाने पिलाने यानी पटाने में काफी खर्चा वहन करना पडा। इसके बाद अपनी धर्मपत्नी जी को जुदा करके विरह का कष्ट भी झेला। इसलिए कि घर का बजट एकदम रेंगने लगा था। क्षति पूर्ति हेतु उसे मैके भेजने का औचित्य मेरे पास था।

उसकी आँखें उदासी से डबडबा आई तो मैंने उसे भी तसल्ली दी और अपने को भी। समझाया कि सारा खर्चा ब्याज सहित वापस आएगा। इसलिए कि यह एक सुव्यवस्थित व्यापार की शुरुआत थी जिसमें इन्वेस्टमेंट करना बहुत लाज़मी शर्त होती है। अभी तो उसके गहने वहने कही भी गिरवी नही रखे गए थे।

जब राम को उसके सीनियर चेलों या मेरे गुरुओं (या दूतों) द्वारा यह सन्देश पहुँचा कि मैंने भारी त्याग के सबूत पेश किए है—यही कि बीबी को धक्का दे मारा है। यह कारुणिक प्रसग सुनते ही राम की आँखों से प्रेमजल चू पडा। मेरे पास स्वय दौडा आया और मुझे अक लगा लिया। श्रद्धा से पुलकित होकर स्वत मेरे मुखश्री से निकला—"रामम् शरणम् गच्छामि।

उस रात जुआ पार्टी डटकर जमी जिसमें बैठने का मैं भी पूरा अधिकारी था। राम खूब हारा। अपने पुराने चेलों को निरन्तर घूरता रहा। वे हारते चले गए। मेरी सभी जेबें नोटों से भर गई।

मेरे कान में एक साथी ने नेक सलाह फूँकी। मैंने सारी को सारी पहली इन्कम राम के कदमों में गुरुदक्षिणा स्वरूप निछावर कर दी। तब वह हमें आधी रात दो खानों में ले गया—एक मयखाने और

दूसरे दिन हम सब पर खुमारी कायम रही। इसलिए मैंने दफ्तर से छुट्टी ले ली थी।

तीसरे दिन मैं दफ्तर गया पर दिल न लगा। दीवाली नजदीक आने

वाली थी। राम द्वारा प्रस्तावित लम्बे चौडे जश्नों की कल्पना से मन मयूर नाच रहा था। मैंने दीवाली एडवास और विद् इम्मीडिएट इफेक्ट छुट्टी अप्लाई कर डाली।

जगह जगह पुलिस द्वारा छापे पडने शुरू हो गए थे। राम ने हमें चौकन्ना कर दिया था। हम सबको एक-एक छुरा भी दिलवा दिया था—"देखो निष्ठापूर्वक जुआ खेलो। कोई भी काम जो खुदा को हाजिर नाजिर रखकर किया जाता है— गलत हो ही नही सकता। यह एक जबर्दस्त मिशन है—यानी यज्ञ। जो इस पवित्र यज्ञ में विघ्न डालने आए उसे रावण का प्रतिनिधि यानी राक्षस समझो। उस पर फौरन तीर चला दो—चूँकि तुम्हारे पास तीर नही है इसलिए छुरा घोंप दो। आगे उसकी किस्मत। इहलोक की शासन व्यवस्था से ऊपर श्री रामचन्द्रजी महाराज का शासन है। यदि उसमें अडिग विश्वास रखोगे तो तुच्छ मिट्टी का इन्सान तुम्हारा बाल भी बाँका नही कर सकता।"

हम सब नतमस्तक होकर अपने अपने छुरे तेज करने में व्यस्त हो गए।

इसके बाद हमें आपस में जुआ नही खेलना था। शहर की नामी गिरामी जुआ पार्टियों से जुआ मैच के चेलेंज एक्सचेंज होने लगे थे। प्रैक्टिस जारी थी।

एहतियात के तौर पर पुलिस स्टेशन के आस पास हम लोग कुछ पोस्टर चिपका आते थे—जिन पर सिर्फ छुरे बने होते थे।

एक रात हमें पोस्टर चिपकाते दो पुलिस वालों ने देख लिया। बाकी साथी तो भाग गए। मैं जान बूझकर भगतसिंह की तरह पकडा गया। वे मुझे अन्दर ले गए। मैंने जोर का कहकहा लगाया। उन्होंने कारण पूछा मैंने उनके अज्ञान का पर्दाफाश करते हुए समझाया कि वे सब प्रजातन्त्र की मूल भावना से अपरिचित हैं तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में खलल डालकर घोर नर्क के दरवाजे जबरदस्ती खुलवाने पर तुल रहे हैं।

हेड कास्टेबिल ने कहा आप यह पोस्टर लगाने बन्द कर दें। इस पर दूसरा कहकहा लगाना मेरे लिए लाजमी था सो स्वर में मेच्योरिटी भरने के लिए लगाया और उन्हें समझाने लगा— अभी से नक्ली छुरों से क्यों डरत

हों। दीवाली वाले दिन आप लोगों को असली छुरों स साक्षात्कार करना पडेगा। आपको अपने बच्चों का ख्याल करना चाहिए। वे मेरे वक्तव्य से प्रभावित हो रहे थे। मैं आगे बढा—"तुम बेचारों को सरकार से मिलता ही क्या है। मैं आप साहबान को श्री रामचन्द्र जी महाराज की सौगन्ध खाकर विश्वास दिलाना पसन्द करूँगा कि अगर आप सबको एक बार जुए का चस्का लग जाए तो बडे आराम से इस गुलामी की नौकरी से चौगुना बल्कि और ज्यादा कमा खाओ। थोडे गुर आने चाहिए बस।"

मैं चुप हो गया और वे गुर पूछने के लिए मेरी खुशामद करने लगे। मैंने कहा—"गुरु बिन गत नही।" और राम का सक्षिप्त सा परिचय दे डाला। उन्होंने उसी दम राम भक्त बनने की शपथ खा डाली।

दूसरी रात पुलिस वालों के साथ महफिलें जुआ जम रही थी। तभी शहर के कुछ नता और अफसर तबके के लोग छाताधारी सैनिकों के रूप में प्रकट हुए। बतौर रिश्वत पुलिस वालों ने उनके सामने नोट ढीले किए। उन्होंने जैसे ही पीठ दिखाई राम ने फौरन श्राप का गोला दे मारा "जुआरियों को सताने वालों तुम सब कगाल हो जाओ।"

"जैसा अन्न वैसा मन" उन सबने उस पैसे का जरूर अन्न खरीद कर डकारा होगा—तभी तो वे सब दूसरी रात नोटों से जेबें भर भरकर हमारे बीच शामिल हो गए। गीदड की मौत आती है तो शहर की तरफ भागता है। राम ने हमें लूट खसोट के गुण सिखा रक्खे थे। वे सबके सब अपने कपडे तक हार कर चले गए।

इसके बाद हमने पुलसिये दोस्तों की वर्दियाँ उधार माँगी। जिन जुआखानों का सुराग पुलिस वाले तो क्या रवि और कवि भी नही लगा सकते थे वहाँ वहाँ हमारी जुआरी मण्डली ने पूरी सजधज के साथ पर्दापण किया। जुआरी डर के मारे काँपने लगे (शायद बच्चे जुआडिये थे)। हम उन्हें आश्वासन देते। पक्डने नही खेलने आए हैं।" वे सहमे सहमे खेलते और लगातार हारते रहते

मेरे हाथ बहुत तगडी रकमें लगी थी। खुशी से झूमकर मैंने आदरणीय ससुर साहब को तार दे डाला "अपनी बेटी को रवाना करने की तैयारी करें। मैं शीघ्र आ रहा हूँ।"

न जाने राम को यह भेद कैसे मालूम हो गया। उसने विरोध किया। मुझे समझाया "बिना त्याग के कोई भी साधना सम्भव नहीं होती। फिर नारी तो सफलता के मार्ग में काँटों के समान है।"

मैंने बडे धैर्य से स्पष्ट किया कि उसकी सीता और मेरी अर्द्धांगिनी में पृथ्वी आकाश का अन्तर है—"आपकी सीता आपको जुआ खेलने से मना करती थी जबकि मेरी श्रीमती जी ने मेरे इस धन्धे में प्रेरणा का रोल अदा किया है।"

राम काआन्वस् हो गया "ठीक कहता होगा तू। ऐसी ही कुछ सुनारियों के बलबूते पर भारत की यह पावन धरती टिकी है। वरना सीताएँ ही पैदा होती रहें तो यह धरती जगह जगह फटती रहे और प्रलय आ जाए। तेरी स्त्री की बातें सुनकर हृदय गद्‌गद् हो उठा है। मुझे भी अपनी सीता की याद आ रही है। मैं तेरा गुरु बना हूँ। अब वक्त आ गया है। मेरे एहसानों का बदला चुका। मैं भी सीता का बुलवाता हूँ, बशर्ते तेरी रानी सीता की गुरु बनकर उसे ठीक राह पर ले आए। सीता यदि मुझे श्राप देना बन्द कर दे तो मेरी इन्कम बडी आसानी से दस गुना बढ सकती है।"

× × ×

दूसरे ही दिन हम दोनों ने गाडी पकडी—हम दोनों ने ऐसा प्रोग्राम बनाया कि एक ही तारीख को अपनी अपनी पत्नियों सहित वापस पहुँचा जाए। उनमें पूरी आस्था प्रकट की जाए। दीवाली वाली रात इन्हीं लक्ष्मियों की पूजा की जाए। तभी हम मालामाल हो सकते हैं।

किन्तु ससुराल पहुँचकर मुझे बेहद परेशानी का सामना करना पडा। यह बडे आश्चर्य की बात थी कि वह अब मेरे साथ लौटना नहा चाहती थी। खैर बडी मिन्नत समाजत और खुशामद के बाद वह राजी हुई। ठीक ऐसी हा मुश्किल राम को भा दरपेश हुई थी। यह उसने मुझे मिलन पर बताया था।

इस वितृष्णा की खाई को पाटने की समस्या हमें सुलझानी थी।

उसी शाम हम चारों ने मीटिंग की। उसमें कुछ शर्तें तय की गईं। उन देवियों पर अटल विश्वास का सबूत पेश करने के लिए हम दोनों ने अपना

सारा धन उनको भेंट कर दिया।

× × ×

दीवाली वाली रात एक बजे तक स्त्रियों का जुआ सम्मेलन होना निश्चित हुआ था। इसके बाद जुआ युवा सघ ने वही स्थान ग्रहण करना था।

एक बजने में अभी काफी देरी थी। अभी हमारे बाकी साथी तथा विरोधी जुआ मण्डली नही पहुँची थी। अन्दर स्त्रियों के कहकहों का शोर हो रहा था। हमारा मन शीघ्रातिशीघ्र जुआ खेलने को मचला जा रहा था। बेमन होकर हम आँगन में पटाखे चलाने लगे थे और सोच रहे थे कि क्यों न अन्दर एप्रोच करके थोडे पैसे माँग लिये जाएँ ।

तभी सीता तथा श्रीमती जो हमारी तरफ आती दिखाई दी। हम खुशी से उनकी तरफ बढे—निकट पहुँचते ही लगा उनके चेहरे रज से एकदम फीके पड रहे हैं। कारण जानने के लिए हम विकल हो उठे। देखा उनके पीछे दो और स्त्रियाँ भी खडी थी। लगभग रोते हुए सीता ने हमें उन स्त्रियों के साथ जाने को कहा। वे दोनों हम दोनों को दाँव पर हार चुकी थी।

हम शर्तों में बँधे हुए थे। प्राण जाइ पर वचन ने जाइ वाला दोहा बोलते हुए उन स्त्रियों के पीछे पीछे चल दिये। पत्नीव्रत धर्म पर अविश्वास करने वालों के लिए ये अनुपम क्षण सीधी चुनौती थे।

चलते समय दोनों ने हमें विश्वास दिलाया कि शीघ्र ही बाजी पलटेगी और वे हमें कैद से रिहा करा देंगी। हमारी झोलियाँ जुए के रुपयों से भर देंगी।

× × ×

हमें ज्यादा दिन प्रतीक्षा नही करनी पडी। तीसरे सुबह ही हमें मुक्त कर दिया गया। हमने उत्सुकतापूर्ण नजरें दौडाइ। "सीता या मेरी श्रीमती जो में से जब कोई भी दिखलाई नही दी तो हमने अपनी मालिक महिलाओं के सम्मुख गर्दन झुकाते हुए पूछा—"तो क्या आप हमें फोकट में छोड रही हैं?"

"हमें तुम मुओं का अचार डालना था क्या? भागो।" जब हम लोग चलने के लिए जरा से हिले तो उन्होंने हमें हिदायत दी—देखो घर जाने से

कोई लाभ नही। अब तक वे सब कुछ बेच बिचा कर किसी दूर दराज शहर में बस चुकी होंगी। दोनों हो पढी लिखी हैं। कोई भी काम या नौकरी करके अपना जीवन यापन कर सकती हैं। तुम जुआरियों से दोनों आजिज आ चुकी थीं। आखिर दुखी और पीडित युवतियों के प्रति हमारा भी तो कुछे कर्तव्य था " कहते कहते उन्होंने किवाड बन्द कर दिए—खटाक्। मैं और राम एकदम स्तब्ध रह गए। हम दोनों एक-दूसरे के चेहरे पढ रहे थे? नहीं युग निरीक्षण कर रहे थे। • •

झुकाव

सध्या के छ बजते न बजते उन लोगों का लाइब्रेरी के प्रागण में जमघट लगना शुरु हो जाता है। पिछले कई हफ्तों से ऐसा लगातार हो रहा है। आज सबसे पहले सेठिया और हनुमान पहुँचकर मुँडेर पर बैठ गए हैं।

अभिवादन सिर्फ हाथ और बाँहें हिलाकर हो चुका है। अब दोनों ही एक दूसरे की तरफ देख रहें हैं कि बोलने में पहल कौन करता है। हालाँकि एक दूसरे के चेहरे देखने के बाद दोनों ही समझ चुके हैं कि उनमें से किसी के पास भी कहने को कुछ नही हैं। चेहरे कह रहे हैं स्थिति यथावत है अपनी जगह से जरा भी हिली डुली नही है। दोनों अजीब सी बोझिलता और चिन्ता से सराबोर हो रहे हैं। शब्दों के अभाव में दोनों ही ख्वामख्वाह चौंकने का सा भाव चेहरे पर लाकर अगल बगल झुक कर देखने लगते हैं कि शायद कोई और साथी आ रहा है।

भँवर अचानक बिल्ली की तरह आहिस्ता से कदम रखता हुआ प्रकट हो जाता है क्यों ? बिल्ली के बच्चे की म्याऊँ की प्रतीकात्मक ध्वनि सुनाई पडती है कि सामने से पारिक यासीन और भी कुछ लोग आते दिखलाई दे जाते हैं।

सुशा भाइला पारिक ड्रामैटिक आवाज गुँजाता है। सबोधन समष्टि परक है।

—क्या हैड ऑफिस गए थे ? भँवर जाने किससे कह रहा है यार अगर मेरा तबादला गाँव में हो गया तो बुरी तरह से मारा जाऊँगा।

—मेरी तकलीफें सुनो तो दग रह जाओ। पारिक की आवाज में काफी तलखी है।

—भय्या, हरेक को अपने घाव ज्यादा हरे दीखते हैं। सेठिया पारिक के वक्तव्य को चुनौती देता है।

इतने में उनके सवाद सुनता हुआ शकुन आ जाता है। आते ही फिकरा कसता है—सेठिया! तुम्हारा क्या है। वैसे ही सौन्दर्य प्रेमी हो। गाँव में रहकर कविताएँ लिखा करना। खूब समय रहेगा और एकान्त भी, जिसकी तुम्हे हमेशा चाह रही है।

—तुम्हें तो जगल में भी भेज दिया जाय तो कोई फर्क नही पडता सेठिया चिढकर उत्तर देता है, एक तो तुम निडर हो दैत्य की काया कल्प वाले। दूसरा तुम्हारी यहाँ सोसायटी में किसी से नही पटती।

सभी जोर जोर से हँसने लगते हैं।

—भले ही जितना हँस लो। अगर मुझे किसी ने गाँव के लिए टच किया तो एक एक को देख लूँगा। शकुन हवा में हाथ चलाता है।

—इससे तो बी० ए० में फेल हो जाते। कम से कम दोस्तों से मनमुटाव तो नही होता। यासीन लम्बे दाँतों को छिपाता सा बोलता है।

—तुम तो अपनी खैर मनाओ मियाँ। शकुन यासीन के कन्धे को झटका देता है।

—इस मरियल के पीछे क्यों पडे रहते हो। भँवर समझाने के लहजे में बोलता है।

—तो फिर तुम्हा आजमा लो इन हाथों को। या जिसमें भी दम हो आ जाए। शकुन आसमान में सिगरेट का कश छोडता है।

—अरे भई! किससे उलझ गए भँवर को पीछे खीचते हुए सेठिया खुद भी दो कदम पीछे हटता है सच पूछो तो सारी मुसीबत की जड यही है। हेड मास्टर के हर वक्त उगल दिए रहता था। अब उसको सभ्य बहाना मिल गया—इस्पेक्टर आफ स्कूल से बोला—साहब रूल के मुताबिक तो इसकी नियुक्ति अब मिडल स्कूल में होना चाहिए। इनका स्टेटस बढा है। साहब का जँच गई।

—ये बातें भला किस से छिपी हैं नर्वदा का पतला स्वर सुनाई पडता है यूनिफार्म पालिसी के तहत हम सब भी लपेटे में आ गए। बच्चू करो मौज इस वक्त तक सभी पन्द्रह जने इकट्ठे हो चुके हैं। शकुन सब की तरफ

घूरता है—जिसकी किस्मत में मौज लिखी है मौज करेगा, जिसके रोना लिखा है रोयेगा ही—हाँ मुझे अगर किसी ने हिलाने की जुर्रत की तो और ज्यादा रोयेगा कहते हुए मूँछों पर ताव देने लगता है।

—क्या बाकियों को हिजडा समझ रखा है ? रघु बुशर्ट के ऊपर के दो बटन खोलता है और शकुन के सामने तन जाता है। शरीर में वह भी शकुन सा तगडा है।

विस्फोटक स्थिति पर काबू पाने के लिए दो तीन जने बीच में आ जाते हैं—छोडो छोडो क्यों पागल बनते हो। हनुमान उन्हें शान्त करता है मुझे अच्छी तरह मालूम है यहा मिडल स्कूलों में बारह वेकेंसी हैं। सिर्फ तीन जनों को ही गाँव जाना पडेगा।

—मेरा नम्बर नही आना चाहिए। शकुन का स्वर ऊँचा है।

—मेरा भी नही। रघु उससे भी ऊँची आवाज निकालता है।

—फिर वही बात। आपस में क्यों लडते हो हनुमान फिर उन्हें शान्त करने लगता है हर कोई अपने लिए कोशिश करता है। निकालो बीस बीस पैसे सबके लिए इन्तजाम करता हूँ।

चाय पीते वक्त वातावरण प्राय शान्त बना रहता है। आपस की बुराइयाँ छोडकर सभी गाँव और गाँव वालों की बुराइयों पर उतर आते हैं।

—मुझे तो गाँव के नाम से ही एलर्जी होने लगती है। भँवर थूकने के लिए दूर चला जाता है।

—मुझे और कुछ नही वहाँ के साँप बिच्छू, अँधेरी रातों

नर्वदा को टोकते हुए पारिक बोलने लगता है—ये मामूली बातें हैं। दरअसल शहर में रह लेने के बाद आदमी गाँव में जी ही नही सकता। वहाँ साफ मौत होती है न अस्पताल की सुविधा न और किसी प्रकार की मौज मस्ती का ठौर ठिकाना। मेरी तो पत्नी हर वक्त की मरीज है।

—मेरी समस्या तो दूसरी है सेठिया कमर सीधी करता हुआ कहता है—बूढे माँ बाप और विधवा दीदी का कैसे साथ खींचू ?

—अब बहुत देर हो ली। कल मुलाकात होगी रेवती उठते हुए कहता है। रेवती छोटे कद का युवक है किशोर ही अधिक लगता है। चेहरा गोरा तथा बाल घुँघराले हैं। सभी जानते है कि रेवती पूरी पहुँच वाला है। और

किसी का काम बने या न बने इसका कुछ बिगड नही सकता। वह बहुत कम बोलता है साथ ही विनोद प्रिय भी है। इन गुणों के कारण सभी उसके कायल हैं।

सडक पर आकर वे फिर से जम गए हैं। उसी मसले पर कोई नया अध्याय जोडने की असफल कोशिश करते हुए चुक से गये हैं। पिटी पिटाई बातों को और पीटने से उन्हें अपने आपको पीटने का सा आभास होने लगा है। कोई भी अकेला झुड छोडने को तैयार नहीं।

—बडे भाइयों। रेवती अँगडाई लेते हुए कहता है अब चलो मेरा वायदा रहा अगर केस थोडा भी मूव हुआ होगा तो कल कुछ न कुछ जरूर बताने लायक खबर लेकर ही आऊँगा।

रेवती के वक्तव्य के बाद पूरा झुड एक साथ विसर्जित हो जाता है।

दूसरे दिन रेवती को छोडकर सभी छ से पहले ही प्रागण में उपस्थित हो जाते हैं। रेवती को न देखकर सबको अपना पहले आना अखरने लगा है। वक्त धीरे धीरे आगे सरक रहा है।

—अगर रेवती ने नई खबर लाने की घोषणा न की होती तो यारों की कसम मैं आज कतई नही आता। नर्वदा बोल रहा है।

आसमान में बादल बने हुए हैं। ठण्ड भी पडने लगा है। प्रागण में अँधेरा सा हो गया है। शक्ल से ज्यादा एक दूसरे को आवाज से पहचाना जा रहा है। आठ बजन का घन्टा सुनाई देता है।

—नमस्ते बडे भाइयो। रेवती का स्वर सबको चौंका सा देता है मुझे खद है। लेट हो गया। दफ्तर से कुछ पता नही चला तो साहब के बँगले चला गया

—तो कुछ पता चला ? कई स्वर एक साथ फूटते हैं।

—किसका कौन से स्कूल में ट्रासफर हो रहा है या हम में से कौन कौन गाँव में पटका जा रहा है। यह मसला तो ज्यों का त्यों बना हुआ है अभी तक। लेकिन इस बीच एक ऐसे सरकुलर की बात सुनने में आई है जिस पर आप लोग आसानी से विश्वास ही नही करेंगे।

—अरे लौंडे। बताओ तो सही पीठ पर प्यार की थपकी देते हुए शकुन पूछता है जब तुम खबर लाए हो तो उसकी प्रामाणिकता में किस उल्लू की

दुम को सन्देह होगा।

—यह तो सच है की आवाजें एक साथ अनुमोदन करती हैं कहो कहो

—देखिए भाई साहब। लेटर अभी कन्फिडेंशल ब्राच में है। इसलिए शोर नही मचना चाहिए।

—धीरे से कह जाओ सब रेवती के और निकट सिमट आते हैं, अपने में कोई भी बेवकूफ नही है। सबको अपना ही सेठिया वातावरण को अनुकूल बनाने की गरज से अचानक चुप हो जाता है।

रेवती भाषण देने की मुद्रा में सीधा खडा हो जाता है—अगले महीने से, टीचर्ज को विलेज अलाउस मिलना शुरू हो रहा है।

—हूँ, तो इससे क्या फर्क पडने वाला है। यहाँ भी तो सिटी अलाउस मिलता है। पारिक गला साफ करते हुए तटस्थ भाव प्रदर्शित कर रहा है।

—नही बन्धु। मैंने हिसाब लगाकर देखा है, जितना वेतन यहाँ लेते हो उसका ठीक ड्योढा नही तो समझ लो बस ड्योढे से कुछ ही कम बैठता है।

—अच्छा। अबकी कोई भी तटस्थ नही रह सका है।

—मैं तो चाचाजी से कहता आया हूँ, रेवती घोषणा कर रहा है कौन रहे इस शहर में इसे शहर कहते हुए भी शर्म आती है। हर वक्त की चख चख। कभी भी कोई चला आ रहा है। स्कूल में सरप्राइज इस्पेक्शन

—और जान को सौ खर्चे और झझट। गाँव में आदमी शान्तिपूर्वक तो रह लेगा भँवर जैसे रेवती के वाक्य में एडिशन करता है फिर घबराई सी आवाज निकालता है पर कुल तीन ही तो वैकेंसी हैं एक तो तुम्ही ले लोगे। क्या मेरे लिए कुछ नही कर सकते। रेवती के कान के पास फुसफुसाता है।

भाइला बिना पैसा चढाये किसी की पार नही पडेगी। या फिर मिनिस्टर या एम० पी० साथ चाहिए। पारिक सार निकाल रहा है।

—जिस का जैसे दाँव लगेगा वैसा करेगा। कोई क्यों पीछे रहने लगेगा। अपन भी पूरा जोर लगाएँगे। सेठिया बोल उठता है।

—और हम भी। दो तीन वेकेन्सी क्या होती है। किसी के कानों में जूँ भी नही रेंगेगी और फुर्र से भर से भर जायेंगी। हनुमान जोशीले स्वर से सबको प्रभावित करना चाहता है।

—शकुन ने बुशर्ट की बाँहें, जो वैसी ही बहुत ऊँची हैं और ऊपर चढाते हुए गरज उठता है—भय्या कुछ भी मुश्किल नही है, इस जमाने में यही होगा ना आखिर में। किसी को गाँव से उखेड़ना ही तो पडेगा

—सेर को सवा सेर मिल जाया करते हैं इसे मत भूलना। रघु चुनौती फेंकता है।

—यह तो वक्त ही बतायेगा, शकुन की आवाज गर्म हो उठी है या फिर अगर अभी आजमाना चाहते हो तो । एक कदम आगे बढ जाता है।

— फिर कल वाली बात अच्छा निकालो बीस बीस पैसे। हनुमान हाथ आगे बढा रहा है।

—अब तो चाय पीकर गम गलत करने वाली बात है। भँवर कहता है। मामला टेढा लगता है।

—मेरा नम्बर गाँव के लिए आ गया तो शराब पिलाकर आप लोगों का गम गलत कराऊँ। नर्वदा हँसता है।

—समस्या पहल से ज्यादा पेचीदा बन गई है। कुल तीन वेकेन्सी और पन्द्रह उम्मीदवार। यासीन निराशा से उखडी उखडी साँस खींचता है।

सभी होटल की तरफ लुढक रहे हैं। • •

कोई भी लड़की

हम ललिताजी के घर कुछ देर के बाद पहुँच जाते लेकिन बीच बाज़ार में अचानक ही उनसे हमारी भेंट हो गई थी। दरअसल हमें ललिताजी के घर उनसे नही अपितु उनकी छोटी बहन सुमिता से मिलना था।

ललिताजी से थोडी बातचीत के बाद ही हमारा उनके घर जाने का मकसद हवा हो गया था। जो कुछ उन्होंने बताया कुछ क्षणों तक तो हमें उस पर जैसे विश्वास ही नही हुआ। फिर हम महा आश्चर्य में डूब गए। मनमोहन को तो जबर्दस्त धक्का लगा था। और यह कतई अस्वाभाविक नही था। वह अपने को सँभालने का प्रयत्न कर रहा था। किन्तु ऐसे समय चेहरे पर कोई भी ओढना एकदम मिस फिट हो जाता है। जबान भी साथ नही देती। मुश्किल से गला साफ करते हुए उसने अधूरा और गलत सा वाक्य ही बाहर निकाला।

—आप तो अभी तक

चूँकि यह मुस्कराने या बौखलाने का अवसर नही था इसलिए ललिता जी ने शान्त और गम्भीर स्वर से उत्तर दिया मेरी बात कैसे ले बैठे—मेरी नेचर मेरी मान्यताएँ शायद आप लोगों से छिपी नहीं हैं।

फिर कुछ देर और इधर उधर की औपचारिक बातें हुईं। एक दूसरे को अपने यहाँ आने को कहकर हम लोग ललिताजी से अलग हो गए थे।

कॉलेज में मैं सुमिता और मनमोहन एक ही क्लास में पढ रहे थे। ललिताजी हमसे एक क्लास सीनियर थी।

इन दोनों बहनों को लेकर कॉलेज सर्किल में बडी चर्चा हुआ करती थी। ललिताजी एकदम साधू प्रकृति की छात्रा थी। निहायत सीधी सादी

पोशाक में कक्षाओं में कदम रखती कि कोई भी आसानी से उनके आने जाने का नोटिस नहीं ले पाता। बहुत शालीन। कम बोलने वाली। कद की कुछ कम लम्बी थीं। चेहरा गोल—एक-दो माता के दागों को छोडकर साफ सुथरा था। सभी छात्र किसी न किसी रूप में उनसे प्रभावित थे। परन्तु उनसे बात चलाने में पहल करने की किसी की हिम्मत नहीं पडती थी।

जबकि सुमिता का स्वभाव चाल ढाल सब कुछ अपनी बहन ललिताजी से ठीक उलटा था। सबकी जुबान पर वह भी चर्चित थी। स्पष्टत: दूसरे अन्दाज से—एक शोख और फैशनेबल खूबसूरत लडकी। लगता ही नहीं कि यह ललिताजी की बहन हो सकती हैं।

× × ×

इधर कई दिनों से मनमोहन को लेकर सुमिता बुरी तरह से बदनाम हो रही थी।

मैंने मनमोहन को समझाया—तुम्हारी 'रेपुटेशन' भी खतरे में है। लडकियाँ अक्सर चुलबुलाकर सारी बला लडकों पर डालकर एकदम बरी हो जाती हैं। तुम्हारी नौबत 'रेस्टिकेशन' तक की आ सकती है।

—तुम्ही क्या सभी मुझसे ईर्ष्या करते हैं। कोई भी आकर खुले दिल से कह दे कि सुमिता अगर उसे कम्पनी दे और वह इस एहसान को नामंजूर कर दे। रही खतरे की बात—सुमिता के लिए कॉलेज, क्या चीज है यह जहान तक छोडा जा सकता है।

मुझे मनमोहन से ऐसे दो टूक उत्तर की आशा नहीं थी। मेरा मुँह बन्द करने के लिए यह काफी था। गुस्सा तो बहुत आया पर यह सोचकर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की कि जरूर मजनूँ का भूत मनमोहन में घुस चुका है।

पढाई भी चल रही थी—इन लोगों का इश्क भी चल रहा था। इस बीच कोई खास ऐसी वैसी घटना नहीं घटी। फिर इम्तहान हुए और खत्म हो गए। मगर इन लोगों का इश्क हस्बेमामूल चलता रहा।

फिर छुट्टियाँ हो गईं।

मैं और मनमोहन एक ही कस्बे के रहने वाले थे। घर जाने की तैयारी करने लगे। करने को तो मनमोहन भी तैयार हो रहा था लेकिन बिल्कुल

मरा मरा सा। घर जाने का उत्साह अथवा उत्कण्ठा का कोई अर्थ उसके सामने नहीं था। मगर होस्टल में और बने रहने का कोई बहाना भी तो नही था उसके पास।

सध्या को गाडी पकडनी थी। स्टेशन पर सुमिता मनमोहन को सी आफ करने आई थी। वह मनमोहन से इतना खुलकर ऊँची आवाज में बातें कर रही थी कि आस पास के तथा आते जाते लोगों का ध्यान बार बार उनकी तरफ खिंच जाता।

एक वाक्य तो शुरू से आखीर तक दुहराती रही—मनमोहन! जाते ही पत्र देना। इतनी सारी छुट्टियाँ छोटे से सडियल शहर में कैसे गुजार सकोगे।

उसके मुँह से अपने कस्बे की बुराई मुझे बहुत खल रही थी। परन्तु मैं क्या बोलता। वह बात तो मनमोहन से कर रही थी। गाडी चलने से थोडी देर पहले मनमोहन के हाथों को अपने हाथों में झुलाते हुए मुस्कराई—कैसे दिल लगेगा मेरे बगैर?

मेरी उपस्थिति से मनमोहन ही कुछ सकुचा रहा था। धीरे से बोला—कहती तो ठीक हो सुमिता पर ।

—जब ठीक कहती हूँ तो कुछ दिन बाद कोई बहाना बनाकर भाग आना। उसकी आवाज़ में आदेश था और अब वह मनमोहन के कन्धे हिला रही थी।

—वायदा करता हूँ, बशर्ते यह थोडी मदद करे। उसने मेरी तरफ देखते हुए उत्साह प्रदर्शित किया।

—तो अब हमें आप से रिक्वेस्ट करनी पडेगी। यही सही। उसने मेरी शर्ट का कालर पकड लिया। अपनी ठुड्डी को जरा सा उचकाया और मुस्करा दी।

मुझे उसकी साँस अपने जिस्म को छूती हुई महसूस हुई और कुछ क्षणों के लिए मैं रोमांचित हो उठा—उस शोख रूप के सामने एक तरह से झुकते हुए मेरे मुँह से निकला—जरूर जरूर हम लोग जल्द मिलेंगे।

तभी गाडी की विह्सल सुनाई दी। मनमोहन से उसने कसकर हाथ मिलाया। सरकती हुई गाडी में हम सवार हो गये। मनमोहन और सुमिता के रुमाल बहुत देर तक हवा में हिलते रहे जब तक कि सब कुछ अँधेरे की

लपेट में नही आ गया।

× × ×

कस्बे में पहुँचते ही मन उल्लास से भरक उठा। स्वजनों के सान्निध्य और मिठास भरे शब्दों से बढकर एक मामूली आदमी के लिए कौन सा दूसरा बडा सुख होगा? छटी उम्र में जिन गली कूचों में हम खेला करते थे उनके बीच हम फिर से खोने लगे। सवेरे सारे खेतों की गश्त लगाते। शाम को कुओं और तालाबों के किनारे बैठे बचपन के साथियों का बडी बेताबी से इन्तज़ार करते। बचपन की घटनाओं और शरारतों की चर्चा छेड देते। उन लोगों को याद करते जो अब इस ससार से कूच कर गये थे तथा उन लोगों के ताज़े हालात जानना चाहते जो रोजी रोटी के सिलसिले में कस्बे से दूर जाकर बसे थे।

न्याज खाँ तो हर शाम ही अपनी बाँसुरी लेकर आता। उसकी मधुर धुन में हम सब मस्त हो जाते।

कम से कम मैं तो इस मस्ती के वातावरण में पूरी तरह खो गया था। बिल्कुल बेफिक्री का आलम। समय के बन्धन से मुक्त। प्रोफेसर्स को जवाब देही पढाई के अधूरेपन का वहम, कुछ भी नही था। जब कई जने मिल जाते, तो बच्चों की तरह ऊधम चौकडी मचाने लगते।

लेकिन मनमोहन इन अतीव सुखों का पूरी तरह रस नही ले पा रहा था। उसे दूसरा ही सुख हरदम अपनी तरफ खींचे रहता। इतने सुखद क्षणों के बीच वह अनमना सा हो उठता। धीरे से मेरे नज़दीक खिसक कर फुसफुसाता—यार, शहर आखिर शहर ही है। यहाँ वह बात कहाँ?

मैं मुस्करा देता तो वह झेंप जाता। परन्तु तुरन्त झेंप मिटाने का उपक्रम करने लगता। गला साफ करत हुए स्पष्ट पूछता—कब चल रहे हो। बोलो। तुम्हें भी तो सुमिता को जवाब देना पडेगा।

मुये वापस जाने की जल्दी नहीं थी। कुछ नाते रिश्तेदारों की शादियाँ होने वाली थीं। मेरे सगे भतीजे का मुण्डन सस्कार निकट था। शहर जाता तो घर वालों से बहाने बनाने पडते—इससे अच्छा मुये यही लगा कि मनमोहन से ही सच सच बोलता जाऊँ भले ही वह इसे बहाना समझता रहे।

नतीजा यह हुआ कि छुट्टियाँ खत्म होने से केवल चार रोज ही पहले ही हम लोग शहर लौट सके।

आँधी धूल आदि के कारण हमारे कमरे बुरी तरह से खराब हो रहे थे। उनकी झाड पोंछ और फिर अपने आपको तैयार करते पूरा दिन निकल गया। शाम को बाहर निकले तो मनमोहन बोला—सारा दिन तुम मुझे किस धूर्तता से उलझाये रहे। अब मेरे साथ पहले सुमिता के घर चलो।

—सब्र का फल मीठा होता है दोस्त। मैंने उसके कन्धे पर थपकी दी। पहले थोडा मार्केटिंग कर लें। चाहो तो कुछ सुमिता के लिए खरीद लो। मेरी सलाह का उस पर अनुकूल प्रभाव पडा। परन्तु क्या पता था कि अचानक बीच बाजार ललिताजी मनमोहन के लिए बदनसीबी का पैगाम लेकर उपस्थित हो जाएँगी।

× × ×

ललिताजी का बाज़ार में अचानक हम लोगों से मिलना। पहले बडे सयत ढग से हम लोगों का हाल चाल पूछना तथा थोडा ठहरकर सुमिता के विवाह का रहस्योद्घाटन करना और उसके पश्चात् मनमोहन के मनोभावों को बारीकी से पढना—एक अजीब घटना चक्र लगने लगा था मुझे। रात गये हम दोनों इसी घटनाक्रम का विश्लेषण करते रहे। हम इस नतीजे पर पहुँचे कि सुमिता के कारण जिस प्रकार मनमोहन की भावनाओं को चोट पहुँची—उससे ललिताजी को बहुत दुःख हुआ है। सुमिता की बहन होने के कारण जैसे वह स्वय को भी दोषी पा रही थी। बार बार हमें अपने यहाँ बुलाने का अर्थ मनमोहन को सात्वना देना था।

दूसरे दिन मनमोहन के साथ मैं भी ललिताजी के घर गया था। चाय से पहले और बाद तक जम कर बातें होती रही थी। यह हमारे लिए आश्चर्य का विषय था कि ललिताजी इतने लम्बे वार्तालाप में भाग ले सकती हैं। कॉलेज की चर्चा बहुत थोडी देर ही चली थी। फिर हम मुख्य विषय पर आ गये थे। ललिताजी बता रही थी कि किस प्रकार अचानक सुमिता ने एक धनाढय रिश्तेदार से विवाह का निर्णय ले डाला—लडका इतना निकट सम्बन्धी था कि सभी रिश्तेदार हैरान रह गये। सब नाराज़ थे परन्तु वे केवल दूर से ही

नाराजगी प्रकट कर सकते थे। सुमिता को समझाने का साहस किसी में नही था। सुमिता ने एक ही रट लगा रखी थी—लडका बहुत अच्छा है। हैंडसम और पैसे वाला। सबसे बडी बात यह है कि खुद यानी सुमिता उसे पसन्द करती है। मनमोहन से हर स्तर पर बेहतर है।

इस पर मैं अपने को नही रोक सकी, बोली—अगर शादी के बाद इससे भी सुन्दर और समर्थ व्यक्ति मिल गया तो ?

उसने सामान्य स्वर से उत्तर दिया—मेरी समझ में नही आता कि लोग व्यक्तिगत स्तर पर जीने के महत्व को क्यों नही समझते। जरूरत रही तो कुछ और छलाँगें लगाने से भी नही हिचकूँगी।

मैं कुछ और कहने लगी तो दूर खडे लडके की तरफ इशारा करते हुए तेज़ स्वर में बोली—मुझे ही तो उसके साथ रहना है। और किसी को रहना हो तो आ जाओ। अब भला मुँहफट को कोई क्या जवाब दे।

लडका भी बस चाकर की तरह उसके चारों तरफ मँडरा रहा था। उसके पास जो दो आँखें थी उनको सुमिता के अतिरिक्त कोई भी दिखाई नही दे रहा था। फिर दोनों कोर्ट चले गए थे।

अन्त में कॉफी का एक-एक प्याला पीकर हम उठ आये थे। मनमोहन के हाव भाव को देखकर लग रहा था कि ललिता जी के सवादों ने अवश्य उसके ज़ख्मों पर मरहम का काम किया है।

दूसरे दिन फिर मनमोहन ललिताजी के घर चलने के लिए मेरी सम्मति चाहता था। मगर मैंने स्पष्ट कह दिया कि मैं इस प्रकार की मुलाकातों का हिमायती नहीं हूँ। उस दिन तो नही मगर आगे के दिनों में मनमोहन का ललिताजी से उनके घर मिलना लाज़मी सा काम हो गया था।

मुझे अक्सर वह बताया करता, आज उसने ललिताजी से यह बात की। आज इस टॉपिक पर डिसकशन हुआ। एक आध बार यह भी बताया कि आज वह जल्दी ही बोर हो गई थी।

मैंने अपने हिसाब से उसे सुझाया कि शुरू से ही पढाई को कायम रखना चाहिए। बाद में पढाई पकड में नही आ पाती। आज कल सभी प्रोफेसर्स पूरी मेहनत करा रहे हैं। क्या पता कल को कोई स्ट्राइक वगैरह हो जाए तो सब काम चौपट हो जाता है। मेरी बात के समर्थन में उसने ।स

कोई भी ९

थोडी देर बाद बातों बातों में इंगित करने लगा कि उसे ललिता से प्रेम
है।

एक साथ आश्चर्य भी हुआ और खुशी भी।

दिन और बीत गए। एक रात मनमोहन चुपके से मेरी चारपाई पर बैठ गया। बोला—यार अब और इन्तजार नही होता। पर क्या करूँ के पास जाते ही जबान हर बार बर्फ की तरह जम जाती है। क्या तुम नहीं कर सकते? कुछ बौखलाई हुई आवाज में मैंने उत्तर दे इन चक्करों से दूर रखो बाबा! बडा अटपटा लगता है इन है।

किया मेरे इतना कहते ही उसका चेहरा एकदम उतर गया है। उठने की सोच रहा है। अच्छा—मैंने फौरन जोडा—वायदा तो । कोशिश कर देखूँगा।

र
पह
सल.
बीच
उपस्थि

गुजरा होगा कि एक दिन मुझे रामेश्वर पुस्तक-गृह से
दिख गईं। वह अकेली ही थी। सोचा बन पडे तो
ललिताजी स्वय मेरी ओर बढी आ रही हैं। हम
हाथ जोडकर नमस्कार किया।
बात करें। मेरी बजाय वही कह रही थी।
जिल्लत से आप से आप से बाहर
आवश्यकता नही पडेगी। और
कॉफी और खाने का कुछ
समय आपके गुणों की
चैरा

ललिताजी
ढग से हम
का रहस्योद्
बारीकी से प
हम दोनों इसी
कि सुमिता के
पहुँची—उससे लौ
कारण जैसे वह स्व
बुलाने का अर्थ मनम

दूसरे दिन मनमो
पहले और बाद तक ज
विषय था कि ललिताजी
की चर्चा बहुत थोडी देर ह
ललिताजी बता रही थी कि
रिश्तेदार से विवाह का निर्ण
कि सभी रिश्तेदार हैरान रह

उसकी बात अच्छी तरह से समझती हूँ। इसीलिए आपको यहाँ हूँ। आदमी को चीजों के आकार प्रकार को समझने में ज्यादा वक्त [illegible] चाहिए। मुझे मनमोहन से मात्र सहानुभूति थी। वह इस चीज़ को [illegible] पाया। इसलिए आप ही उसे समझाएँ।

[illegible]शा के विपरीत ललिताजी का वक्तव्य सुनकर मैं अचम्भित रह [illegible]क्का भी लगा।

-आप ही सोचें उनका स्वर बहुत सन्तुलित था मेरी और सुमिता की [illegible] कितना अन्तर है। शायद जमीन आसमान जितना। अब हमें उस के बारे में सोचना पडेगा जिसकी च्वाइस सुमिता भी हो सकती है [illegible] भी हो सकती हूँ। आप चिन्ता न करें विवाह के लिए उन्हें एक लडकी कहीं भी बडी आसानी से मिल जाएगी।

शायद उन्होंने मेरे मनोभाव पढ लिए थे। मुझे पसोपेश में पडते देखकर [illegible]न्होंने अन्तिम वाक्य जोडा था। आप चिन्ता न करें वाला वाक्य।

हम रेस्तराँ से बाहर आ गए थे। ललिताजी के वक्तव्य पर विचार [illegible]दर मैं एक तरह से उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देख रहा था। उनके विचारों [illegible] प्रौढता के सामने मनमोहन कितना अदना था—और मैं भी।

परन्तु उनके जाते ही समस्या का असली पक्ष विकराल रूप में मेरे सम्मुख खडा हुआ था। सोचने लगा, अब मनमोहन को समूची स्थिति से कैसे अवगत कराऊँगा। क्या उसे दूसरा जबर्दस्त शॉक नहीं लगेगा? आखिर मेरे पास इसके लिए क्या इलाज हो सकता है?

मनमोहन के कमरे के पास जाकर ठिठक कर खडा हो गया। मैं उसे [illegible]स प्रकार सात्वना देना चाहता था। पर लगा यह काम मेरा नहीं है—कोई [illegible]री लडकी ही उसे सात्वना दे सकती है। • •

मगर थोडी देर बाद बातों बातों में इंगित करने लगा कि उसे ललिता से प्रेम हो गया है।

मुझे एक साथ आश्चर्य भी हुआ और खुशी भी।

कुछ दिन और बीत गए। एक रात मनमोहन चुपके से मेरी चारपाई पर आकर बैठ गया। बोला—यार अब और इन्तजार नही होता। पर क्या करूँ ललिता के पास जाते ही जबान हर बार बर्फ की तरह जम जाती है। क्या तुम कोई मदद नही कर सकते? कुछ बौखलाई हुई आवाज में मैंने उत्तर दिया—मुझे इन चक्करों से दूर रखो बाबा! बडा अटपटा लगता है इन मामलों में।

मैंने गौर किया मेरे इतना कहते ही उसका चेहरा एकदम उतर गया है। बेजबान सा उठने की सोच रहा है। अच्छा—मैंने फौरन जोड़ा—वायदा तो नही करता। कोशिश कर देखूँगा।

सप्ताह के करीब ही गुज़रा होगा कि एक दिन मुझे रामेश्वर पुस्तक-गृह से निकलती हुई ललिताजी दिख गईं। वह अकेली ही थी। सोचा बन पडे तो बात करके देखूँ। तभी देखा ललिताजी स्वय मेरी ओर बढी आ रही हैं। हम दोनों ने ही दूर से एक दूसरे को हाथ जोडकर नमस्कार किया।

—आपको समय हो तो थोडी बात करें। मेरी बजाय वही कह रही थी।

सुनकर खुशी हुई। लगा एक बडी जिल्लत से आप से आप से बाहर आ गया हूँ—अब मुझे अधिक कहने की आवश्यकता नही पडेगी। और काम बन जाएगा शायद।

हम दोनों बगल के बडे रेस्तराँ में आ गये। कॉफी और खाने का कुछ सामान लाने के लिए जल्दी से बोला—मनमोहन हर समय आपके गुणों की प्रशसा किया करता है।

—मुझे लगता है वह ज़रूरत से ज्यादा भावुक है। वह रुकीं बैरा कॉफी को ट्रे मेज़ पर रखकर चला गया तो वह आगे बोलीं—वह अपनी पढाई चौपट करेगा।

—ऐसे में सुना है आदमी सबकुछ भूल जाता है। उसी के विषय में स्वय आपसे बात करना चाह रहा था। थोड़ा मुस्कराते हुए मैंने उत्तर दिया।

—मैं उसकी बात अच्छी तरह से समझती हूँ। इसीलिए आपको यहाँ बुला लाई हूँ। आदमी को चीजों के आकार प्रकार को समझने में ज्यादा वक्त नहीं लगना चाहिए। मुझे मनमोहन से मात्र सहानुभूति थी। वह इस चीज़ को नहीं समझ पाया। इसलिए आप ही उसे समझाएँ।

आशा के विपरीत ललिताजी का वक्तव्य सुनकर मैं अचम्भित रह गया। धक्का भी लगा।

—आप ही सोचें, उनका स्वर बहुत सन्तुलित था मेरी और सुमिता की नेचर में कितना अन्तर है। शायद जमीन आसमान जितना। अब हमें उस व्यक्ति के बारे में सोचना पडेगा, जिसकी च्वाइस सुमिता भी हो सकती है और मैं भी हो सकती हूँ। आप चिन्ता न करें विवाह के लिए उन्हें एक अदद लडकी कहीं भी बडी आसानी से मिल जाएगी।

शायद उन्होंने मेरे मनोभाव पढ लिए थे। मुझे पसोपेश में पडते देखकर ही उन्होंने अन्तिम वाक्य जोडा था। 'आप चिन्ता न करें' वाला वाक्य।

हम रेस्तरां से बाहर आ गए थे। ललिताजी के वक्तव्य पर विचार सुनकर मैं एक तरह से उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देख रहा था। उनके विचारों की प्रौढता के सामने मनमोहन कितना अदना था—और मैं भी।

परन्तु उनके जाते ही समस्या का असली पक्ष विकराल रूप में मेरे सम्मुख खडा हुआ था। सोचने लगा, अब मनमोहन को समूची स्थिति से कैसे अवगत कराऊँगा। क्या उसे दूसरा जबर्दस्त शॉक नहीं लगेगा? आखिर मेरे पास इसके लिए क्या इलाज हो सकता है?

मनमोहन के कमरे के पास जाकर ठिठक कर खडा हो गया। मैं उसे किस प्रकार सात्वना देना चाहता था। पर लगा, यह काम मेरा नहीं है—कोई तीसरी लडकी ही उसे सात्वना दे सकती है। • •

मगर थोडी देर बाद बातों बातों में इंगित करने लगा कि उसे ललिता से प्रेम हो गया है।

मुझे एक साथ आश्चर्य भी हुआ और खुशी भी।

कुछ दिन और बीत गए। एक रात मनमोहन चुपके से मेरी चारपाई पर आकर बैठ गया। बोला—यार अब और इन्तजार नही होता। पर क्या करूँ ललिता के पास जाते ही जबान हर बार बर्फ की तरह जम जाती है। क्या तुम कोई मदद नही कर सकते? कुछ बौखलाई हुई आवाज में मैंने उत्तर दिया—मुझे इन चक्करों से दूर रखो बाबा। बडा अटपटा लगता है इन मामलों में।

मैंने गौर किया मेरे इतना कहते ही उसका चेहरा एकदम उतर गया है। बेज़बान सा उठने को सोच रहा है। अच्छा—मैंने फौरन जोडा—वायदा तो नही करता। कोशिश कर देखूँगा।

सप्ताह के करीब ही गुज़रा होगा कि एक दिन मुझे रामेश्वर पुस्तक गृह से निकलती हुई ललिताजी दिख गईं। वह अकेली ही थीं। सोचा बन पडे तो बात करके देखूँ। तभी देखा, ललिताजी स्वयं मेरी ओर बढी आ रही हैं। हम दोनों ने ही दूर से एक दूसरे को हाथ जोडकर नमस्कार किया।

—आपको समय हो तो थोडी बात करें। मेरी बजाय वही कह रही थीं।

सुनकर खुशी हुई। लगा एक बडी जिल्लत से आप से आप से बाहर आ गया हूँ—अब मुझे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं पडेगी। और काम बन जाएगा शायद।

हम दोनों बगल के बडे रेस्तरां में आ गये। कॉफी और खाने का कुछ सामान लाने के लिए जल्दी से बोला—मनमोहन हर समय आपके गुणों की प्रशंसा किया करता है।

—मुझे लगता है यह ज़रूरत से ज्यादा भावुक है। वह रुकीं बैरा कॉफी की ट्रे मेज़ पर रखकर चला गया तो वह आगे बोलीं—वह अपनी पढाई चौपट करेगा।

—ऐसे में सुना है आदमी सबकुछ भूल जाता है। उसी के विषय में स्वयं आपसे बात करना चाह रहा था। थोडा मुस्कराते हुए मैंने उत्तर दिया।

—मैं उसकी बात अच्छी तरह से समझती हूँ। इसीलिए आपको यहाँ बुला लाई हूँ। आदमी को चीजों के आकार प्रकार को समझने में ज़्यादा वक्त नही लगना चाहिए। मुझे मनमोहन से मात्र सहानुभूति थी। वह इस चीज़ को नही समझ पाया। इसलिए आप ही उसे समझाएँ।

आशा के विपरीत ललिताजी का वक्तव्य सुनकर मैं अचम्भित रह गया। धक्का भी लगा।

—आप ही सोचें, उनका स्वर बहुत सन्तुलित था, मेरी और सुमिता की नेचर में कितना अन्तर है। शायद ज़मीन आसमान जितना। अब हमें उस व्यक्ति के बारे में सोचना पडेगा जिसकी च्वाइस सुमिता भी हो सकती है और मैं भी हो सकती हूँ। आप चिन्ता न करें विवाह के लिए उन्हें एक अदद लडकी कही भी बडी आसानी से मिल जाएगी।

शायद उन्होंने मेरे मनोभाव पढ लिए थे। मुझे पसोपेश में पडते देखकर ही उन्होंने अन्तिम वाक्य जोडा था। आप चिन्ता न करें' वाला वाक्य।

हम रेस्तराँ से बाहर आ गए थे। ललिताजी को वक्तव्य पर विचार सुनकर मै एक तरह से उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देख रहा था। उनके विचारों की प्रौढता के सामने मनमोहन कितना अदना था—और मैं भी।

परन्तु उनके जाते ही समस्या का असली पथ विकराल रूप में मेरे सम्मुख खडा हुआ था। सोचने लगा, अब मनमोहन को समूची स्थिति से कैसे अवगत कराऊँगा। क्या उसे दूसरा जबर्दस्त शॉक नही लगेगा? आखिर मेरे पास इसके लिए क्या इलाज हो सकता है ?

मनमोहन के कमरे के पास आकर ठिठक कर खडा हो गया। मैं उसे किस प्रकार सात्वना देना चाहता था। पर लगा, यह काम मेरा नही है—कोई तीसरी लडकी ही उसे सात्वना दे सकती है। • •

नाच घर

—तो समझे वह किसी के इशारे पर नाच रही है

सोचता हूँ, "प्रगति न हुई बला हुई। तुझे इसमें क्या मजे आ रहे हैं मैं अपने आपसे कहता हूँ, साथ ही एक डेढ एक बरस पहले का प्रगति का भोला मासूम और गुमसुम चेहरा आँखों के सामने तैर जाता है जिन दिनों उसके पिता की असमायिक मृत्यु हुई थी।

विनय तो बस बोलता ही जाता है। अपनी गन्दी आदत के मुताबिक रहकर जोश में भर उठता है। बार बार मेरे कन्धों पर दबाव डालते हुए—समझे! समझे, कहता हुआ मुझे हिला हिलाकर अधमरा किए दे रहा है। अपने भारी चेहरे की छोटी छोटी आँखों को मिचमिचाता है और कुटिलता से हँसता है—देखना किसी दिन प्रगति धमाका कर देगी। सभी को यही उम्मीद है। हमारे दफ्तर वाले बस इसी चीज का इन्तजार कर रहे हैं।

मेरे अन्दर भी कही गहरे तक किसी रस का सचार होता है और साथ ही थोडी वितृष्णा जागृत होती है। बेंच से दूसरी तरफ मुँह मोडकर थूक देता हूँ— पिच्चड

दो तीन लडके हो हो हो करते हुए सामने से गुजर जाते हैं साले आवारा कही के हमारे ही स्कूल के तो नही। मन ही मन झल्लाहट होती है।

हम दोनों करीब सवा घन्टा पहले बेंच को खीचकर सडक के इस पार बरगद के पेड के नीचे ले आए थे। विनय अपने दफ्तर से घन्टा भर पहले खिसक आया था और मेरे स्कूल में किसी यमदूत की तरह धमका था। तब उसे देखते थे मैं लडकों को डाँटने लगा था—तुम लोगों को कुछ आता जाता तो है नही। भागो। कल पढकर आना।

हम दोनों की बीवियाँ, बच्चों को साथ लेकर छुट्टियाँ बिताने मैके गई हुई थी जो स्कूल खुल जाने के बावजूद, अभी तक लौटी नही थी। हम लोग कभी कोई ऊल जलूल फिल्म देखते। या फिर प्रगति का टॉपिक पकड लेते कि जरूर किसी दिन वह अपने बॉस को कॉप्ट कर देगी। देखना उस दिन पूरे शहर में धमाका हो जाएगा। हो सकता है अखबार वाले बॉस के साथ प्रगति का भी फोटो छाप दें। सुर्खी दर सुर्खी। कल्पना में ही यह दृश्य हमारी बाछें खिलाए रहता कि किस तरह यार लोग दफ्तरों में लपक-लपककर एक दूसरे से अखबार छीन रहे हैं। उस पर झुके पडे हैं। एक दूसरे की तरफ आँखें मटका मटकाकर ऊँचे स्वर में प्रगति बॉस—वाले हैडिंग की तफसील पढ पढकर मुस्करा रहे हैं। इसके बरअक्स कोई इज्जतदार प्राणी, बच्चों को दूर दूर हटाकर, अपनी बीवी को दबी आवाज में पूरा विवरण समझा रहा है। चस्का दर चस्का।

कुछ देर की चुप्पी के बाद मैं फिर बोलता हूँ—इतने दिन तो गुजर गए आखिर तुम्हारे दफ्तर में वह दिन कब आएगा। ऊब से बचने के लिए मैं विषय को कमजोर नही पडने देना चाहता—साथ ही शायद यह चाहता हूँ कि विनय किसी भविष्य वक्ता की भाँति कोई निश्चित तिथि बता दे।

—तुम इन्तजार करो बेटे, विनय फिर मेरे कन्धे की हड्डी टटोलता है, सभी तो इन्तजार कर रहे हैं तुम भी लाइन में लग जाओ। मैं दावे के साथ कहता हूँ कि अब बहुत दिन नही लगेंगे। यह सब तय हो चुका है

—हाकु कुर्बान जाऊँ। आशिक मिजाजी पर। तुम्हारा जमाना फिर से लौट आया लगता है। यह कैलाश था विनय का सीनियर। जाने कब से पीछे की पगडण्डी के रास्ते दबे पाँव आकर हमारी बगल में जमा हुआ था। वह फिर से विनय से सम्बोधित हुआ—क्यों बेटे इसीलिए दफ्तर से भाग आए थे। कोई जवाब देने की बजाय विनय हडबडी में चाय वाले को पुकार लगाई—एक कप चाय भेजना।

—हम तो दो प्यालियाँ पिएँगे। कैलाश ने बच्चों की तरह मचलते हुए स्वर उभारा।

—जरा देखना तमाशा। एक साथ दो कप लेकर बारी बारी से घूँट भरते रहेंगे और हमारे साहब का ध्यान कही और होगा। फिर से कन्धे पर

भार डालते हुए विनय ने कहा।

—हाँ हाँ कही और। और तुम्हारा किधर था साले। प्रगति की बातें हो रही थी ना कैलाश हँसने लगा तुम्हें पता होना चाहिए वह किसके इशारे पर नाच रही है।

सब पता है। तुम भी तो गए थे उसके घर विनय ने अपनी जानकारी का पुष्टि चाही सुना है काटजू साहब भी साथ थे मिठाई के पैकेट भी ले गए थे आप लोग। फिर क्या रहा।

—हाँ कैलाश लम्बा स्वर निकालते हुए जरा रुक गया जैसे सोच में पड गया हो कि भेद की बात है। बताना उचित है या नही फिर यकायक पूरे बहाव में आ गया लेकिन घर पर तो ऐसी बात खुलकर की नही जा सकती। तुमसे क्या छिपाना। वैसे तो तुम सब को मालूम ही है कि वक्त आने पर वह खुलकर अपन लोगों का साथ देगी। बस देखते जाओ। उसने वायदा कर रखा है।

ऐसी ही कुछ और बातों में कैलाश विनय को—और मुझे भी—आश्वस्त करता हुआ दो की बजाय तीन कप चाय पीकर चला गया।

कैलाश के जाते ही विनय खुशी के मारे मेरे नाजुक कन्धों पर पिल पडा—देखा मैंने ठीक कहा था न। वह नाच रही है कि नही।

—बिल्कुल नाच रही है, मैंने भी जैसे पूरी खुशी को फूट पडने से रोकते हुए गम्भीरता से कहा अगला दृश्य देखो वह बॉस को बचाएगी।

—ठीक कहा किसी के साथ भलाई करो तो वह आडे वक्त साथ देता ही है। उस समय प्रगति के फादर की डैथ हुई थी उस दौरान नई भर्ती पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था। फिर भी हम सब दफ्तर वालों ने मिलजुल कर बडे निस्वार्थ भाव से उसे किसी तरह लगवा ही लिया। और अन्त में तुम काम आए। सब साइन आदि हो जाने पर एक बाबू ने पूरी फाइल ही गायब कर दी थी। तुम्हें तो याद ही होगा वह बाबू तुम्हारे मामे का लडका निकला था। तुम्हारी ललाड खाकर वह पैसे खाना भूल गया। इस प्रकार प्रगति का उद्धार करने में तुम्हारा भी पूरा योगदान रहा हालाँकि तुम्हारा तो उस परिवार से कुछ लेना देना नही था।

—हाँ अच्छी लगती है। तुम्हारे दफ्तर जाता हूँ तो नमस्ते करती है।

मैंने तटस्थ भाव प्रदर्शित किया।

बहुत से दूसरे ग्राहकों के आने पर, हमने बेंच खाली कर दी। कुछ देर तक यूँ ही इधर उधर घूमते रहने के बाद, विनय ने मेरा कन्धा छोड दिया—अच्छा तो, अब चला जाए। मेरा खाना तो आज ओंकार के यहाँ है।

तो ठीक है मैंने उत्तर दिया साथ ही अपनी कलाई घडी देखी। सोचा बेशुमार टाइम पडा है अभी। फिर भी व्यस्तता का नाटक करते हुए जोडा—हाँ हाँ, ठीक है फिर बात करेंगे इस टापिक पर। वैसे तुम लोगों को बॉस से तकलीफ क्या है।

विनय जानता था कि सारी स्थितियों की मुझे बारीकी से जानकारी है—वह खुद और उसके दफ्तर के दूसरे साथी मुझे सब बताते रहते थे। तो भी विनय ने मुझे निराश नही किया। फिर से मेरे कन्धों को पकडने का चास पा गया। और छोटे पार्क की तरफ घसीट ले गया—इधर आओ सब बताता हूँ।

पार्क के बाहर जँगले का सहारा लेकर हम लोग खडे हो गए कुछ देर की चुप्पी के बाद विनय बुदबुदाया—साला बडा शरीफ और ईमानदार बनता है। प्रगति ही निकाल देगी सारी शराफत। हम सब लोग पूरी मेहनत करते हैं। कई बार देर देर तक दफ्तर में एक्स्ट्रा टाइम तक बैठते हैं। हमारी बदौलत से व्यापारियों का समय पर भुगतान होता। हमारी ही बदौलत वह दिनों दिन में इतने अमीर बन जाते हैं। मगर हमारी कमीशन के नाम पर इनकी नानी मरती है। हमारा कहना मात्र इतना है कि ज्यों ही महँगाई का कोई किस्त घोषित हो हमारा कमीशन उसी अनुसार बढा दो। पहले जो और जिस प्रकार हम चाहते थे वे मान जाते थे। फिर हमारे पहले बॉस विष्णु प्रसाद का भी पूरा दबदबा था। उनका एक डॉट होती कि क्या अपने मातहतों के अरमानों और हसरतों का गला घोट डालूँ। फिर उन्हें पुचकार भी देते—भाइयो! हमारा आपका रिश्ता हमेशा चलने वाला है। क्यों मलाल पैदा करते हो। ऐसा काम करो कि आपका भी काम चलता रहे और यह भी नाराज निराश न होने पाएँ। फिर पैसा तो आनी जानी चीज है। इस प्यार और डॉट से हमेशा व्यापारी वर्ग दबा दबा रहता है। मगर अब इस नए बॉस के आते ही सारा व्यापारी वर्ग हमारे ऊपर हावी हो गया है। क्यों? इसलिए

कि हमारे साहब करते हैं कि अपने आप निपटो। मेरे पास कोई भी किसी किस्म की कम्प्लेंट नहीं आनी चाहिए। दो तीन को तो चार्जशीट ईशू कर चुका हूँ। हम लोग भी कम नहीं। बडे आराम से रोक-रोककर बिल पास करते कराते हैं। जहाँ सम्भव होता है, गुम भी कर देते हैं। ले लो मज़े।

—कोई यदि किसी को परेशान करेगा तो खुद भी परेशान होगा ही। मैंने विनय की नमकीन बातों पर थोडा मसाला छिडक दिया।

—हाँ सो तो ठीक है, पर यह साला बॉस हमें ही परेशान करने पर तुला है अब ज्यादातर कागज़ अपने पास सीधे मँगवा लेता है। और निपटारा प्रगति से करवाता है। बेचारी प्रगति दिन रात पिसती है। है तो बहुत होशियार और समझदार भी कम नहीं। काम मिनटों में निपटा देती है। बॉस उस से बहुत खुश है लेकिन प्रगति अन्दर से बहुत तंग है। हमने उसे वही तरकीब बताई। दो चार रोज़ तो सोचती रही। फिर कहने लगी—सारा दिन तो अकेली उसी के पास बैठी रहती हूँ। मुश्किल तो नही है मेरे लिए प्रगति जी हमारी मदद करना आपका नैतिक कर्तव्य है। आप तो प्रगतिजी बस जरा जोर से चीख पडना और हाँ अपने कपडे थोडे छितरा देना। बाकी हम सब सँभाल लेंगे। काटजू साहब ने उसे उसका रोल विस्तार से समझा दिया है।

सुना तो है प्रगति कहती है—आप लोग बिल्कुल निश्चिंत हो जाइए। मैं किसी भी दिन उपयुक्त अवसर देखकर चीख पडूँगी।

तब से सब लोग उस उपयुक्त घडी या शुभ घडी का इन्तजार कर रहे हैं और सुनो लच आवर्ज में भी यदि प्रगति बॉस के केबिन में हो तो काटजू समेत कई दूसरे लोग चाय तक पीने नही जाते। बस इन्तजार में वही आस पास बने रहते हैं।

—खूब खूब असली ड्यूटी तो यह हुई ना। वाकई यह एक जबर्दस्त योजना है। समझो अब धमाका हुआ। मैं भी शायद उसी सुखद घडी के इन्तजार में चहकने लगता हूँ, प्रगति एक दिन जरूर रग लाएगी।

फिर हम दोनों पडोस के खोख वाले से पान लेकर चबाते हुए विदा हो जाते हैं।

फिर मे घडी देखता हूँ, ओह समय तो अब भी बहुत पडा है। सोचता हूँ रोटी किसी ढाबे होटल से खा लूँ या घर जाकर स्वय बनाऊँ।

तभी सामने से विनय के ऑफिस का, पतला लम्बा सफेद काली दाढी वाला दफ्तरी बाबू आता दिखाई देता है। बहुदा मेरे, विनय के दफ्तर में जमे रहने की वजह से, वह भी तुम से भली भाँति परिचित है। उसे देखकर रोकता हूँ तो वह 'जय राम जी की करता है।

मैं बिना पिए हुए पूरे सरूर में हूँ—क्यों दादा, क्या हाल है। सुना है आपकी प्रगति किसी के इशारे पर नाच रही है। क्यों ?

—क्या बातें करते हैं मास्टर साहब प्रगति दीदी तो बहुत पढ़ी लिखी समझदार है। उसे शादी नही करनी क्या? इन टुच्चों के बहकावे में आकर क्या बदनामी मोल लेगी। आप भी क्या बात करते हैं। दफ्तरी बाबू जैसे सारा गुस्सा मुझी पर उडेलने लगता है आप तो लगता है हमारे दफ्तर वालों के कहे पर नाचने लगे।

—अच्छा तो। अपना क्या है यकायक मेरा नशा काफूर हो जाता है, तो सबसे झूठे वायदे करती है वह।

—तो क्या करे बेचारी! माँ और भाई बहनों का बोझा उठाए हुए है। इन सब को भी खुश रखे रहती है। इधर साहब दीदी की कार्यक्षमता के गुण गाते हैं उधर व्यापारी लोग भी दीदी से खूब प्रभावित और खुश हैं। यह बाबू लोग तो यदा-कदा उसे मिठाई के पैकेट देते है। वे लोग तो आए दिन सीधे पैकेट ही भिजवा देते हैं ऐसे कि पता भी न चले कि किसने क्या भेजा है। प्रगति बिटिया पहले दिनों की तरह भोली नही है। आई० ए० एस० में बैठा है। यहाँ तो किसी तरह वक्त निकाल रही है। बस यह समझिए। ऐसी बहादुर लडकी मैंने नही देखी। सब मोर्चों पर एक साथ लड रही है।

—हूँ, तो फिर ऐसा है आगे मेरे मुँह से कुछ नही निकलता। बडे निराश भाव से चलने को होता हूँ।

—हाँ हाँ यूँ ही मानिए बाबू साहब कि वह तो सबको नचा रही है। दादा जोर से हँसने लगता है है ना मजे की बात।

मजे की बात मैं सोचता हूँ और सारा मजा किरकिरा हो जाता है। मुँह का स्वाद कसैला। थूका भी नही जाता।

रही सहा भूख खत्म हो जाती है। तारघर वाली गली में मुड जाता हूँ।

• •

शुद्ध कल्याण

मुनीष को पहले पहल मैंने बीना के घर पर देखा था। लम्बा कद। चौडा माथा। घुँघराले बाल। रग एकदम साफ़। गोरा। बहुत साधारण पैंट और कमीज में भी जँचता था। मगर इसके साथ ही मैंने यह भी महसूस किया था कि केवल अच्छी शक्ल सूरत ही से हम किसी को प्रभावित नही कर सकते। न सब बातों से बढकर मैनर्ज का ही अधिक महत्त्व होता है।

मेरे और बीना के पिताजी की पुरानी दोस्ती है इसी प्रकार मैं और बीना भी पक्की सहेलियाँ हैं। पहली कक्षा से आज हायर सेकण्डरी तक हम दोनों साथ हैं। पढाई खेल और हर सुख दुख में भी साथ रहती हैं।

बहुत दिनों के अन्तराल के बाद उस दिन मैं बीना के घर गई थी। बीना के छोटे भाई बहन अभी स्कूल से लौटे थे। हम लोग चाय का सामान टेबिल पर लगा ही रहे थे कि अकल भी ऑफिस से आ गए।

चाय शुरू किए हुए अभी थोडी ही देर हुई थी कि वह अचानक भारी पदचाप के साथ आ उपस्थित हुआ। एक बार तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे छत को फाडकर वह हम सबके बीच कूद पडा हो।

—आओ मुन्ने आओ। अकल ने दूर पडी हुई कुर्सी की तरफ इशारा करते हुए उसे खुले हाथों से लिया।

उसने कुर्सी को बडी बेरहमी से खीचा। चर चर की आवाज से पूरा कमरा गूँज उठा। अकल और आटी की कुर्सियों के बीच उसने अपनी कुर्सी को बेतरह फँसाया। फिर केतली के ढक्कन को जल्दबाजी से उठाते हुए जोर से बोला—कही आप सबने मिलकर मेरे हिस्से की चाय खत्म तो नही कर दी। आटी और अकल मुस्करा रहे थे। बाकी सब चुप थे। वही बोला—

गनीमत है कुछ तो बची है। और उसी तूफानी तेजी से सारी चाय को एक कप में उडेल दिया। कप भर गया। बाकी चाय टेबिल पर बिखर गई तो आगे जोडा चाय के बचने की उम्मीद नही थी भाइ। यह बिनी चाय की पक्की दुश्मन है। तभी बिनी के साथ बैठी मुझ पर नजर पडी तो ऊँची आवाज को थोडा नीचे लाते हुए अँगुली से इशारा करते हुए बोल उठा—यह लडकी कौन है ?

मुझे उसके यह सारे हाव भाव बडे अटपटे लगे। मैं दूसरी ओर देखने लगी तो आटी ने मेरा सक्षिप्त सा परिचय दिया—बिनी की सहेली है।

मैंने सोचा अब वह हाथ जोडकर मुझे विश करेगा। मगर अच्छा अच्छा। कहते हुए वह थोडा हिला। एक बार मुझे घूरा और ठहाका लगाया।

मुझे आश्चर्य हुआ। इसमें भला हँसने की क्या बात है। मैंने बीना को कोहनी मारी कि उठो तुम्हारे कमरे में चलते हैं। शायद उसने मेरी इस क्रिया को देख लिया। बीना से बोला—मेरी चाय गर्म कर लाओ या तकलीफ अगर न हो तो थोडी ताजी चाय कहकर हँसने लगा।

बीना भी हँसने लगी—लाइए प्याला गम किए लाती हूँ। ताजा चाय आपकी किस्मत में कहाँ ?

इस पर उसके साथ सबने ठहाका लगाया।

बीना उठकर चली गई तो मुझे लगा कि वह बात भले ही किसी से कर रहा हो घूर मुझे ही रहा है। शायद लडकियों को घूरना उसकी आदत है।

मैं वहाँ ज्यादा देर न रुक सकी। रसोईघर में बीना के पास चल दी। बीना चाय गर्म कर चुकी थी। मैंने कहा—तुम्हारे कमरे में हूँ। चाय देकर जल्दी आना।

बीना जल्दा नहा लौटी। मैं उसक कमर में बैठी बोर होती रही। रह रहकर साथ के कमरे से ठहाकों की गूँज मेरे कानों से टकराती रही।

बीना आई तो मैंने छूटते ही पूछा—कौन है यह क्या देखा है उसमें, जो रीझी बैठी थी उस पर

मैंने वास्तव में ये शब्द बहुत गुस्से की हालत में कहे थे। परन्तु बीना शरारती अन्दाज़ से मुस्कराई—वह तो लगता है तुझ पर रीझ गया है। तभी मुझे बिठाये रखा कि शायद इसी बहाने देवी तुम वहाँ दर्शन दो। पर तुम

बडी बेदर्दी हो जालिम।

मैं जल भुन गई—अब मैं चलूँगी। मेरा स्वर एकदम शुष्क हो चुका था।

—हम भी चलेंगे तुम्हारे साथ। कई दिनों से आटी से मुलाकात नही हुई। शायद मेरी नाराजगी को खत्म करने के लिए बीना मेरे साथ चल दी।

रास्ते में बीना ने कहा—अंग्रेजी के लिए तू किसी टयूटर की बात कर रही थी। मिला कोई ?

—नहीं। मेरे स्वर मे कुछ नर्मी आ गई थी।

—तो मुनीष से पढ लिया करो।

—कौन मुनीष ?

—अरे यही मुन्ना जो चाय के समय आया था।

दुबारा उसका जिक्र आने पर मैं तैश में आ गई—खबरदार जो उसका नाम लिया। उससे पढना तो दूर, मैं उसकी शक्ल तक भी नही देखना चाहती।

इतने में हमारा घर आ गया।

मम्मी ने बीना को बहुत प्यार से अपने पास बिठाया। अकल, आटी और परिवार के सदस्यों का हाल चाल पूछा। फिर पढाई के विषय में बात चल निकली। मम्मी ने मेरे बारे में कहा कि मुन्नी के डैडी को इसकी इग्लिश की चिन्ता लगी रहती है। कहते हैं अगर इसकी इग्लिश अच्छी हो जाए तो इसे कोई फर्स्ट डिविजन लेने से कोई नही रोक सकता

—आटी। हमारे यहाँ मुनीष भाई साहब हैं आजकल बीना भावावेश में मम्मी की बात को काटकर सहसा रुक गई फिर इतना और जोडा पर यह उनसे पढना नही चाहती।

मैंने बीना को घूरकर देखा तो वह गुम सुम हो गई। मगर मम्मी ने मुनीष के विषय में और जानना चाहा तो बीना को बताना पडा—आटी, मुनीष हमारे पापा के मित्र के लाडले बेटे हैं। हमारे पापा भी उन्हें उसी तरह लाड करते हैं। नौकरी का प्रबन्ध करने के लिए पापा ने उन्हें बुलाया है। खूब रौनक लगी रहती है। हर वक्त सबको हँसाते रहते हैं।

—नौकरी का क्या हुआ ? क्या तुम्हारे ही यहाँ रहते हैं ? मम्मी ने एक

साथ दो प्रश्न पूछ डाले।

—पहले तो कुछ रोज़ हमारे यहाँ रहे। अभी नौकरी नही लगी तो पापा ने दो ट्यूशन्स दिलवा दी। फिर वह जिद करने लगे कि अलग रहूँगा। यहाँ पढाई नही हो पाती। अब हमारे निकट एक कमरा लेकर रहने लगे हैं।

मैं दोनों के लम्बे होते वार्तालापों से मन ही मन कुढ रही थी। बात को घुमाने का कोई विषय ढूँढ रही थी कि मम्मी ने और एक प्रश्न कर डाला।

—कहाँ तक पढे हैं ?

—इंग्लिश में एम० ए० किया है। पी० एच० डी० करने की फिक्र में हैं।

—तो उनसे कहना कि कल से इनको पढाने आ जाया करें।

सुनते ही मैं जैसे निराशा के जाल में आ गई। मुझे उम्मीद नही थी कि मम्मी इतनी जल्दी बिना फीस पूछे निर्णय ले लेंगी।

मैंने विरोध जरूर किया लेकिन उस विरोध में दम नही था।

दूसरे दिन मैंने स्कूल में बीना को जा पकडा—बोल तेरी मशा क्या है। तू क्या फ्रैंडशिप खत्म करने पर तुली हुई है ?

—क्यों चौंकने के भाव से बीना मेरी ओर निहारने लगी।

—इतनी भोली बनने की जरूरत नहा। अगर तुम्हारे पापा के मुन्ने साहब मुझे पढाने आने लगे तो यही होगा।

—मैं समझता हूँ, ढसन मेरे कधे पर हाथ रखते हुए, मनाने के लहजे में कहा—तुम दोनों का ही इसमें हित है। तुम्हें पढाई चाहिए, उसे पैसा।

—तू उसे किसी तरह टरका देना वरना उसके हाथ को झटका सा देते हुए मैं दूर छिटक गई थी। वह कुछ कहना चाहती थी परन्तु मेरे पास धैर्य कहाँ था। मैंने तो अपना वाक्य ही अधूरा छोड दिया था।

उसी शाम ही मुनीप हमारे यहाँ आने लगा था। मैं सदा एकदम गम्भीर बनी रहती लेकिन पाया वह तो एकदम गम्भीरता की मूरत है। कई बार सन्देह होता कि यह बीना के घर वाला मुनीप नही है। पढाई को छोडकर कोई भी बात हम दोनों के दरम्यान न आती। वह अपने विषय का पडित था। कुछ ही दिनों में मैं अपने आपको कुछ होशियार आँकने लगी थी।

इस प्रकार दिन तेजी से गुजरते जा रहे थे। इधर बीना से मेरी बोलचाल

एकदम बन्द हो गई थी। मैंने प्रिंसिपल से प्रार्थना करके अपना सेक्शन बदलवा लिया था। मैं इस बात का नोटिस ही नही लेती कि बीना स्कूल आई भी है या नही।

× × ×

एक दिन स्टडी रूम में बैठी मुनीष की प्रतीक्षा कर रही थी। परन्तु लगता था, शायद वह आज न आए। बाहर कभी धीमे तो कभी तेज बारिश हो रही थी।

थोडी देर बाद मुनीष आ पहुँचा—सॉरी रूमाल से मुँह पोंछते हुए उसने कहा—लेट हो गया। बीना के यहाँ उलझ गया था। तुम अब बीना के घर नही जाती। उसने रूमाल को खोलते हुए मेरी तरफ प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

मुनीष के मुँह से ये शब्द मेरे लिए अप्रत्याशित थे। मेरे मुँह से चौंकने का सा स्वर निकला—क्या क्यो ?

—नही जानती उसे निमोनिया है। शी इज टू सीरियस।

मैंने पढने के लिए किताबें नही खोली। मम्मी को बताकर मुनीष को साथ लेकर उसी बारिश में बीना के घर पहुँची।

सारा घर ही मुझे एकबारगी मुर्दा लगा। सारे सदस्य एकदम चुपचाप जाने किधर को देख रहे थे।

मुझे देखते ही बीना के मुख पर एक क्षण के लिए हल्की सी मुस्कान आ गई। मैं उसके सिरहाने बैठ गई। धीरे से उसके माथे और सिर को थपथपाने लगी। आँखों से आँसू न निकल पडें इसलिए मैंने अपना चेहरा दूसरी ओर फेर लिया।

मेरी मनोदशा समझकर आण्टी मुझे दूसरे कमरे ले गईं। बोली—तू कई दिनों से आई क्यों नही ? तुझे देखकर तो जैसे बीना के प्राण लौट आये हैं। बीमार होने के बाद हमने इसे पहली बार मुस्कराते देखा है।

मुझे बहुत पश्चाताप हुआ। मैंने घर पर फोन कर दिया कि अभी यहीं रुकूँगी। सारी स्थिति समझकर मम्मी मान गईं।

उस रात तो मैं बिल्कुल नही सोई। बस अपनी बीना की देख भाल करती रही।

कुछ दिनों में बीना काफी स्वस्थ हो गई तो मुझे लगा,(भले ही कोई इसे मेरा दम्भ अथवा प्यार पूर्ण कल्पना माने) मेरा बायकाट भी उसकी बीमारी बढ़ाने का ज़रूर कारण रहा होगा।

दवा दारू लाने और घर बाहर का काम करने हेतु मुनीष का बहुत बडा समय यहीं बीतता। इस प्रकार अब मुझे एक बार फिर मुनीष को नए सिरे से समझने परखने का अवसर मिला। तब मुझे लगा था कि मुनीष के प्रति मेरी मूल धारणाएँ एकदम खोखली हैं। न तो वह असभ्य है और न उच्छृंखल प्रकृति का युवक। हालाँकि अब भी बीना की तबीयत सुधरने पर वह पहले की तरह अपने ठहाकों से पूरे घर को गुँजाए रहता। बात करते हुए सामने वाले को घूर कर देखता रहता। किन्तु अब मुझे उसकी इन्हीं क्रियाओं में उसका अदम्य आत्म विश्वास और खुश मिज़ाजी की झलक मिलती।

अब मैं अपने घर लौट आई थी। पढ़ाई का सिलसिला फिर से जमने लगा। बडी बेताबी से मुनीष के आने की प्रतीक्षा किया करती। यह मुझमें एक विचित्र परिवर्तन था। पहले तो मनाती थी—वह न ही आये तो अच्छा। बोरियत से बचूँगी। लेकिन अब उसके बिना हर वक्त खोई खोई सी रहती। बेकरार। लगता जरूर मैं अपने से कुछ छिपाती हूँ।

अजीब उधेड बुन की स्थिति की शिकार हो चली थी मैं। अपने चेहरे को अलमारी के शीशे के सामने जाकर देखती तो किसी फिल्म की अल्हड नायिका का ध्यान आने लगता। प्रेम? नही तो । फिर? तो और क्या है यह सब? बीना से कहूँ? ख्वामख्वाह मजाक उडायेगी—तुम तो नफरत करती थी उससे । मम्मी से? मारे लाज और डर के सहम सहम जाती।

एक दिन स्कूल से लौट रही थी। रास्ते में मुनीष को देखा। वह मुझे अनदेखा करके निकलना चाहता था कि मैंने रास्ता रोक लिया। मुस्कराई—दिन में भी आपको कम दिखलाई पडता है महाशय! चश्मे का नम्बर बदलवा लें ।

—सोचा आप जल्दी में हैं। बडी सादगी से वह बोला।

—आप अपनी बात कीजिए।

—नही इतनी जल्दी में नही था।

मैंने इधर उधर देखा और साहस बटोरते हुए कहा—तो आज हमें घुमा

लाइए ना।

थोडा आश्चर्य प्रकट करते हुए मुनीष ने कहा—

—क्या ? पुस्तकें आपके पास हैं। मम्मी फिक्र न करेंगी ?

—आप अपनी फिक्र की करिए। हम तो अभी इसी वक्त आपके साथ चलेंगे। अपनी मुँहफट जबान पर मैं स्वय शर्मा गई ।

—मेरी अभी एक सज्जन से अपनी नौकरी के सिलसिले में इगेजमेन्ट है।

—आप बहाने बनाने लगे। मैंने बुझे हुए स्वर में कहा।

—बिल्कुल नही। तुम पहले घर जाओ। किताबें रखो। मम्मी को बताकर जाओ। तब तक मैं अपना काम निबटा लूँगा। मैं ठीक सवा घन्टे बाद तुम को यही मिलूँगा। उसने मुझे कलाई—घडी दिखाते हुए कहा।

जल्दी जल्दी घर पहुँची। मुझे लगा। मेरी साँस बहुत ऊँचे नीचे चल रही हैं। मुश्किल से चाय के घूँट भर रही थी। नाश्ते में से कुछ नही लिया तो मम्मी ने पूछा—तबियत तो ठीक है ?

—ठीक हूँ। स्कूल में सहेलियों के साथ कुछ खा पी लिया था मम्मी। अभी उन्ही लोगों के साथ कुछ घूमने घामने का प्रोग्राम भी है। मैंने पहली बार मम्मी से झूठ बोला।

—अभी इस वक्त ? मम्मी ने आश्चर्य से पूछा।

—हाँ मम्मी। चली जाऊँ ना ? मैंने ज़मीन की तरफ देखते हुए कहा।

—वायदा कर आई हो तो ज़रूर जाओ। देरी न करना।

मैंने खुशी खुशी कपडे बदले। जैसा और जितना सज सँवर सकती थी, अपने आपको जल्दी जल्दी तैयार किया।

मैं चल रही थी और दिल खुशी से बज रहा था। ठीक सवा घन्टे बाद मुनीष को वहाँ अपने इन्तज़ार में खडे पाया तो दिल की धडकन और तेज हो गई। हम दोनों ने एक रेस्तराँ में चाय पी। फिर पार्क पहुँचे। मार्च की शाम एकदम बडी लुभावनी बन गई थी मेरे लिए।

एक तरफ कुछ एकात देखकर उधर ही चलकर हम दोनों हरी हरी घास पर बैठ गए।

थोड़ी इधर-उधर की बातें करते। मगर बार बार कहने को कुछ न रह
ाता। मैं बराबर यह यत्न कर रही थी कि कोई सही सूत्र हाथ लगे तो मुनीष
क अपने मनोभाव प्रकट कर दूँ। फिर जो होना हो, हो।

अचानक एक नया जोडा हमारे नज़दीक से गुजरा। स्त्री भरपूर शृंगार
िए हुए थी। पुरुष नये पेटून का सूट पहने था।

—लगता है नवदम्पती हैं। मैंने धीमे स्वर में कहा।

—होंगे। मुनीष ने लापरवाही से उत्तर दिया और घास पर लेटकर दूसरी
रफ देखने लगा।

बात को आगे बढाने का सूत्र हाथ से जाते देखकर बदहवास होने लगी
गर मैंने साहस का दामन न छोडा—मुनीष! बड़े प्यार से उसका हाथ
हलाते हुए मैंने कहा—जाने हमें देखकर क्या समझे होंगे।

इस पर मुनीष ने वही चिर परिचित ठहाका लगाया तो दूर बैठे
ोग बाग भी हमारी तरफ देखने लगे। मुनीष भी उठ बैठा। फिर मेरा हाथ
कडते हुए खडा हो गया—उठ मनिया रानी उठ देर हो रही है। मैं
न्त्रवत् सी उसके पीछे पीछे चलने लगी थी। वह मुस्करा रहा था और मैं
सके भावों की टोह लेने का यत्न कर रही थी। पर कुछ समझ नहीं पा रही
ी।

पार्क से निकल कर मुनीष ने मुझसे एक प्याला और चाय या कॉफी
ीने का आग्रह किया। परन्तु मैं टाल गई—अब मम्मी इन्तजार करती होंगी।

वास्तव में मुनीष को न समझ पाने के कारण मैं ढह सी गई थी।

रात का इन्तज़ार करती रही। मुनीष नहीं आया। दूसरे दिन। तीसरे
दिन। इसी तरह बस बेताबी से कई दिनों तक इन्तजार ही चलता रहा। मुनीष
नहीं आया।

मम्मी पूछती—मुनीष ने आना क्यों बन्द कर दिया?

मैं भला क्या उत्तर देती! बल्कि इस प्रश्न से और घबरा जाती। दिन
रात सोचती रहती—कहीं मुनीष मेरे आचरण के विषय में बीना से कह दे।
कितनी बदनामी होगी। मैं डर से सिमट जाती। नहीं मुनीष ऐसा क्यों करने
लगा। उसने तो मेरा हाथ पकडकर प्यार से मुझे मनिया रानी कहा था।

चल क्या रही थी। भाग रही थी। एक दो मर्तबा दिल किया कि भीडभाड से दूर कही किसी कोने में जा कर पत्र पढ लूँ। मगर हिम्मत नही हुई। बस पत्र को टटोलती जरूर रही, कि कही गिर तो नहीं गया।

घर पहुँच कर भी जल्दी पत्र पढने का अवसर नही मिल पा रहा था। पहले हाथ मुँह धोया। फिर नाश्ता किया। तभी हमारे यहाँ मिलने वाले लोग आ गये। मैं जलती भुनती उनके लिए जलपान की व्यवस्था करती रही। अन्तत: जब वे लोग चले गये और मम्मी रसोई में घुसी, तो मैं अपने कमरे में पहुँची। धीरे से कमरा बन्द किया। पत्र मैं पहले ही किस तरह यहाँ अलमारी में कागजों के नीचे छिपा गई थी। उसे निकाला। साँस मेरी बहुत जोर से चल रही थी।

प्रिय मित्र!

मेरी बडी वाली बहन शीला का विवाह पक्का हो गया है। क्या तुम मेरे लिए दो हजार रुपये की व्यवस्था करवा सकोगे? आशा करता हूँ, तुम्हारा पैसा जल्द ही लौटा सकने की स्थिति में आ जाऊँगा। नौकरी का प्रबन्ध समझो हो गया। विवाह मई में होगा। छुट्टी के लिए अभी से प्रबन्ध कर लेना।

तुम्हारा मुनीष

पत्र पढकर मैं अचम्भित रह गई। यह क्या?

क्या इस शैली में मुनीष मुझे ब्लैक मैल करना चाह रहा है? नही मुनीष कम से कम इस तरह की नीचता पर नही उतर सकता। फिर भी डर निरन्तर बना रहा और मैं सारी रात सो न सकी।

सवेरे जल्दी से उठी और तैयार होने लगी। मम्मी को बताया कि बीना के घर से नोटस लेने हैं। वही से नाश्ता करके स्कूल जाऊँगी।

मुनीष का कमरा मैं देख चुकी थी उन्ही दिनों जब बीना के यहाँ रह रही थी। मैं सीधे वही पहुँची। वह मेज पर गर्दन झुकाए कुछ लिख रहा था। मुझे देखते ही खडा हो गया। हँसते हुए बोला—सुबह सुबह कैसे कष्ट किया।

मेरा गला एकदम सूख हा था। बिना एक शब्द बोले मैंने वही पत्र उसकी मेज पर फैला दिया।

पत्र देखते ही वह जोर से ठहाका मारकर हँसा। वाह कैसी रही मेरे

दोस्त मुनीष। वह अपनी पीठ पर शाबाशी देने लगा।

—आखिर यह क्या तमाशा है? मज़ाक की भी हद होती है। जितनी ज़ोर से मैं बोल सकती थी बोली लेकिन मुझे स्वय अनुभव हुआ मेरी आवाज मुश्किल तक मुनीष तक ही पहुँची होगी।

—कुछ नहीं आप बैठिए तो सही, उसने कुर्सी खीचते हुए कहा—पत्रों की अदला बदली।

—तो मेरा पत्र कहाँ है? मैंने पूछा।

—भई वह उधर पोस्ट हो गया। वह लापरवाही से बोला।

मैं डर गई। परन्तु साहस करके पूछा—क्या लिखा था उसमें।

—भई एक तो न आ सकने की माफी माँगी थी। क्या बीना ने कुछ बताया नहीं। तार आने पर अचानक घर चला गया था। बहन की सगाई करने। दूसरा मैंने यह लिखा था कि प्रेम को कच्ची उम्र के लड़के लड़कियाँ न समझकर एक साधारण गलती कर डालते हैं तथा भटकाव में आकर अपनी पढ़ाई तथा दूसरे उत्तरदायित्वों का अहित करते हैं। यह तब और भी भद्दा होता है जब ट्यूटर ही अपनी छात्रा से प्रणय सम्बन्ध दर्शाने लगे। इस प्रकार हमारे यहाँ यह पेशा कितना बदनाम हुआ है।

मैं एकाग्र मनःस्थिति से मुनीष की तरफ देखे जा रही थी—कितना बेझिझक और आत्म विश्वासी युवक है। वही जो सब मुझसे कह सुन रहा है अपने मित्र या बीना या किसी के सामने निःसकोच कह सकता है जिस बात को लेकर मैं इतनी भयभीत हो रही हूँ, कितनी साधारण और आम बात होने वाली गलतियों में आँक रहा है उसे।

तभी बड़े ज़ोर से ठहाके की गूँज मेरे कानों से टकरायी—समझ गई न मनिया रानी। बस पहले दिनों की सी मेहनत करने लगो। मैं दो तीन दिनों में फिर आने लगूँगा। काम का कुछ ऐसा ही बोझ पड़ा है। तब तक तुम अपने सारे पाठ दोहरा जाओ।

मैं जब तक बाहर निकली वह दोबारा मेज पर झुक गया था। मैंने देखा सामने दिन का उजाला पूरी तरह फैल चुका था। मौसम एकदम शान्त था। मेरे लिए कोई भी दुविधा नहीं थी। नए पाठ के मैं किसी भी दरवाज़े पर बेझिझक जा सकती थी। बीना के। अपने। या स्कूल के। • •

शैशवग्रस्त

स्कूटर को गैलरी में खडा किया। साडी समेटती हुई घर में घुसी। वही शब्द गूँज उठे कुछ फैसला किया? हर किसी के मुँह में यही शब्द जैसे फडफडाते रहते हैं जो मेरे घर पहुँचते ही बडी आकुलता से छूटकर आजाद हो जाते हैं मेरा घेराव करने के लिए।

ऐसा भी हुआ कि घर में कोई भी नही था या फिर भी मुझे यही शब्द सुनाई दे गए। मुझे लगने लगा था कि घर की दीवारों, दरवाज़ों, खिडकियों में भी यही शब्द इस सीमा तक भर गए हैं। कि अब इनके अतिरेक से बोझिल हो कर वे सब यही शब्द उडेलने लग गए हैं—' सुधा तुमने कुछ फैसला किया?

जिस तकलीफ के दौर से मैं गुजरी हूँ उसकी व्याख्या फिजूल होगी। मेरी मनोदशा की कल्पना कोई मेरे जैसी लडकी ही कर सकती है, जिस पर जब तब फेंक फेंककर उसे हर दिशा से निरन्तर कसने का प्रयत्न किया जा रहा हो।

मेरे कान पक चुके थे। मैं हैरान थी। यह सब करने के पीछे घर वालों की मेरे प्रति शुभाकांक्षा है। अथवा मेरे विरूद्ध कोई गहरा षडयन्त्र रचा जा रहा है।

सच्चाई यह है कि मैं नौकरी पेशा लडकी हूँ। सरकारी संस्थान में एक प्रतिष्ठित पद पर कार्यरत हूँ। पे अच्छी है। घर वालों पर कुछ खर्च भी करती हूँ। फिर भी यही सुनने को मिलता है हमें अपना भार हल्का करना है। कब तक निपटेंगे। समझ में नहीं आता।

यह भी अपने आप में एक अजीब बात है कि जिस बात को हम बहुत

अजीब पाते हैं, उसी अजीब बात के लगातार दोहराए जाने पर वही अजीब बात अजीब नही रह जाती। जिन शब्दों को पहले पहल सुनकर तिलमिला उठती थी। नफरत करती थी या कभी कभी रो तक दिया करती थी अब उन्ही शब्दों को सुनती हुई बहुधा मुस्कराती मटकती हुई आँगन पार कर जाती हूँ। पर्स को अलमारी के साथ बिछे हुए सोफे पर पटक देती हूँ। कपडे बदलते हुए गुनगुनाने लगती हूँ। गुनगुनाती रहती हूँ। न परवाह है दुनिया की। न डर जमाने का।

इतनी विषम स्थितियों से टक्कर ले सकने का बल मुझमें इतनी जल्दी कैसे जागृत हो गया कुछ-कुछ समझ में आने लगा है। बचपन से ही नितान्त स्वच्छन्द जीती रही हूँ। स्कूल कॉलेज, फिर डिग्री, कोर्स और फलस्वरूप अच्छी सर्विस में आ गई। तुझे अब लम्बे समय तक कोई भी दबा कर नही रख सकता री सुधा क्यों जी को छोटा करती रे। मैंने अपने आप से कहा था।

मेरा अपने तक ही सीमित सवाद कैसे इतना प्रभावकारी सिद्ध हो गया सोचकर स्वय को आश्चर्य होता है।

या हो सकता है माता पिता भाई ने मिलकर कोई मीटिंग की हो कि इस प्रकार तो शायद सुधा घर से ही अलग हो सकती है। और फिर तो खानदान की पूरी आन बान दॉव पर लग जाएगी।

तब से मेरे और घर वालों के बीच एक प्रकार का समझौता सा चलने लगा है कि मैं घर से दफ्तर और दफ्तर से सीधे घर लौटा करूँगी। और किसी प्रकार का अतिरिक्त कार्यक्रम होगा तो उससे परिवारजनों को अवगत करा दिया करूँगी।

इसमें मेरे लिए भला क्या दिक्कत हो सकती थी। पहले भी मेरी आदत इधर-उधर घूमने की नहीं थी। जहाँ तक अतिरिक्त कार्यक्रम का मतव्य मैं समझती हूँ, वह यह है कि यदि मेरी पसद का कोई लडका मुझे जचेगा तो उसकी जानकारी मैं परिवार वालों को दे दूँगी।

मेरी जिद्द के आगे घर वालों को झुकना पडा था। उन दिनों उन्होंने मेरा रिश्ता जो दिनेश से लगभग तय कर लिया था रद्द कर दिया था। इसके बाद दो ढाई महीने शान्ति पूर्वक गुजरे थे। किन्तु आखिर कब तक ? वे फिर

बेचैन रहने लगे। उनकी नजरों में शायद मैं एक पके हुए फल का रूप ग्रहण कर चुकी थी जिसे वक्त रहते मंडी में ठीक आदमी के पास भेजना नितान्त आवश्यक था। उनको जैसे भय था कि घर में पड़े पड़े इसमें सडाँध आने लगेगी। दूसरे ही किसी घर में मेरी गति थी, जहाँ घुसते ही मैं लहलहा उठूँगी और खुशबू से लबरेज कर दूँगी समूचा वातावरण।

दिनेश तक के सारे मामले तो खत्म हो ही चुके थे। अब फिर नम्बर शुरु होने लगे। पहले परेश का। फिर सुरेन का। फिर महेन्द्र का फिर ।
जाने यह नम्बरवार सिलसिला कब तक मेरे इर्द गिर्द मँडराना है। कितने ही छोकरों को उन्होंने देख डाला या फिर मुझे दिखलाने ले आते थे।

वास्तव में वे सबके सब मुझे छोकरे ही लगे थे। कोई काठी का बहुत लम्बा। कोई निहायत ठिगना। पतलचू। कोई बहुत नही तो थोडा मोटा। मगर वे स्वय ऐसे नहीं होते तो उनकी माँ बहने, ऐसी ही किसी मूरत को प्रतिबिम्बित करतीं। कोई बेवजह फूहड ढग से हँसती थी। कोई दो मिनट में ही बहुत ज्यादा चुलबुली हो उठती। कोई तो छोकरियों से भी बढ चढकर चटकीला बनाव शृगार किए होती। सो मैं उनके छोकरों को रिजेक्ट कर देती। कइयों की तो बातों से ही मुझे साफ साफ काइयाँपन टपता दीखता। मैं रिश्ते ठुकराती चलती। घर वाले निराश होते चलते।

दो एक लडके तो जाने कहा से हिम्मत बटोरकर (ज़रूर मेरे घर वालों की शह पाकर ही) ऑफिस में मेरे केबिन तक चले आए थे। स्मार्ट। कुछ-कुछ गर्वीले व्यक्तित्व वाले मुझे ठीक से लगे। लेकिन जल्द ही मेरे अधिनस्थ कर्मचारियों से मुझे उनके विषय में पता चला कि वे इस माने में पूरे छोकरे निकले क्योंकि वे गाँठ के पूरे थे। मुझे लगा कि वे मेरी अच्छी सैलरी को ही चटकारे ले लेकर डकारने पर उतारू हैं।

खुलासा यह है एक को पद में और पैसों में। कोई एजूकेशन में कोई कद में। कोई उम्र में कम ही कम। छोकरे ही छोकरे। इन्हें गले लगाऊँ। या इन की गर्दन मरोड कर रख दूँ।

हाँ एक मन मोहन थे जो अपने नाम को सार्थक करने के उद्देश्य से कुछ रोज तक हमारे घर आते रहे। मेरी परख में भी ठीक आने लगे। लाखों का बिजनेस था। उसी झोंक में आकर एक दिन कह उठे हम तो ... से

नौकरी छुडवा देंगे। घर में राज करेंगी। हमारे मम्मी डैडी को भी राहत मिलेगी।

मैं समझ गई की मुझे उडती चिडिया समझता है और पँख काटकर अपने घर की दासी बनाने पर आमादा है। अत कुछ-कुछ शट अप वाले लहजे में उससे पीछा छुडवा लिया। तू होवा कौन है मेरी नौकरी छुडवाने वाला। अपना रास्ता नापते नज़र आओ मिस्टर।

अब हम क्या करें। जिस तेजी से पहले रिश्ते आते थे अब प्राय बन्द हो चले हैं। घर वालों को यही चिन्ता खाए जा रही थी और यही उनकी शिकायत भी थी। ऐसी नाक चढी लडकी करोडों में एक पैदा होती होगी। न हमें कोई लडका पसन्द करने देती है और न ही खुद को ढूँढ सकती है। तुम्हारी आयु बढेगी तो फिर हर तरह से छोटा लडका ही मिलेगा।

अन्तिम शब्द कुछ ऐसे थे जो मेरे लिए चुनौती बन गए। अच्छा तो यह बात है। मेरे लिए भला क्या मुश्किल है।

दो तीन महीने हुए थे अनूप सागर को यहाँ आए हुए। अक्सर उनका काम हमारे दफ्तर में पडता था। हालाँकि पडना नहीं चाहिए था। खैर बडे उत्साह और ललक से मेरी ओर देखा करते थे। मैंने अनूप सागर को थोडी लिफ्ट देनी शुरू कर दी। नैन नक्श ठीक थे। रग थोडा साँवला। कानों के नजदीक बालों में हल्की सफेदी छूने लगी थी। आज़ाद ख्याल। बात करते तो जैसे आत्म विश्वास की आन्तरिक परतें खुलती चली जाती। शायद मुझे ऐसे ही किसी आदमी की तलाश थी। सुन रखा था, कि पाश्चात्य देशों में लडकियाँ किसी भरे पूरे परिपक्व पुरुष से शादी करती हैं जो वैल मैच्योर्ड हो। अनूप मेरी ओर थोडा बढे तो मैं जैसे भागकर उनकी तरफ पहुँच गई। कहा आप मेरे माता पिता भाई से बात कर लें।

उसी शाम को हमारे घर पर श्री अनूप सागर का बडी गर्म जोशी से स्वागत हुआ। चलो हमारी रानी बिटिया ने किसी का तो चुनाव किया।

परन्तु रात भर घर वाले जागते रहे और मुझे सुना सुना कर बडबडाते रहे न उम्र का मेल। न रग न रूप। है भी दूसरे प्रान्त का। चलो इस बात को हम महत्त्व नहीं देते। तो भी लडके की पूर खोज तो होनी ही चाहिए।

मैं उत्तर देने पर विवष हो गई मैंने सब आस पास वालों से पूछ लिया है

सभी इन्हें अच्छे स्वभाव का मिलनसार बता रहे हैं। पैसा भी बहुत है घर पर। अब आप जल्दी से कोई तिथि निश्चित करके इस अध्याय को यही समाप्त करें। यह सब कहने के बावजूद मन में कुछ खट पट होती रही। हो सकता है जीवन में पहली बार इस विषय को मैं गम्भीरता से लेने लगी होऊँ।

तीसरे दिन हमारी गोरखपुर शाखा की मेरी काउन्टर पार्ट श्रीमती पार्वती आई थी कसालिडेशन् मीटिंग में भाग लेने के लिए। श्रीमती पार्वती से मेरी भेंट सक्ले ट्रेनिंग स्कूल में हुई थी। वह मुझे बहुत अच्छी लगी थी। साल में उनके एक दो पत्र आ जाया करते थे। पिछले साल उनकी शादी में भी गई थी।

मैं उन्हें अपने केबिन में बिठाए चाय पिला रही थी कि तभी श्री अनूप कुमार बडे अनौपचारिक ढग से केबिन का दरवाजा धकेलते हुए अन्दर आ गए जोर से 'हैलो' के तुरन्त बाद जैसे स्वर थरथरा गया। ओह सॉरी यू आर बिजी। और तुरन्त उल्टे पैर लौट गए। हालाँकि मैं कहती रह गई—आइए बैठिए। इन से मिलवाऊँ।

मैं तो इनसे मिली हुई हूँ। तुम कब से जानती हो। इसे यहाँ इस तरह क्यों आया। पार्वती ने पूछा।

पलभर के इस छोटे से प्रसग ने मुझे अन्दर तक हिला दिया। लगभग काँपते हए पूछा कि वह अनूप को कैसे जानती है। सहसा ध्यान हो आया—अनूप सागर ने अपने गोरखपुर के किसी गाँव का ही तो बताया था। अपनी बात सक्षेप में पार्वती को बताकर मैं गुम सुम हो गई थी।

पार्वती कह रही थी कई लोगों को यही चस्का होता है। मेरी एक रिश्ते की बहन पर डोरे डालता रहा। हमने खोज बीन की तो पता चला की गाँव में बहुत पहले उसकी शादी हो चुकी थी। दो बच्चे भी हैं। शायद एक शादी और कही भी कर रखी है। इसका भाई भी दो शादियाँ रचा चुका है। पगली मुझे एक चिट्ठी तो डाल दी होती।

मैं भी बस एक अच्छा पद और उम्र के कई साल गुजारने के बावजूद एक छोकरी ही बनी रही। कहते कहते मैं बरबस हँस पडी। • •

मजाक

मैं जैसे लुढकता हुआ सा नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से बाहर आ पहुँचा। मेरे बेजान से हाथ में किसी तरह एक अटैची केस झूल रहा था। चारों ओर भीड थी। भागम भाग। फिर भी वे मुझे दिख गई।

काफी समय से कुछ खाया नही था। न किसी से बोला था। एक नाटक के रिहर्सल में व्यस्त बना रहा था। नाटक के फेल होने पर मेरा गला एकदम सूख गया। मैंने किसी प्रकार पूरे ज़ोर से मुँह खोला—दर्शना बहनजी जैसे कोई बच्चा नीद में डर कर चिल्ला ठठता है।

मैं उन्हें कभी नाम से नही पुकारता। बहनजी कहता हूँ। मेरी सबसे बडी साली है। इतने शोर में वे समझ लें कि उन्हें ही पुकारा जा रहा है। वे ताँगे की पिछली सीट पर बैठी थी। ताँगा रेंगने लगा था।

मैं भागकर किसी तरह नजदीक पहुँचा। ताँगा अब रुक गया था। यह पूछते हुए मेरी हताश जरुर मेरे चेहरे की ऊपरी परत पर झलकने लगी होगी।

तभी दर्शना बहनजी ने कहा—तो तू परेशान क्यों हो रहा है। सबको ठीक ढग से फर्स्ट क्लास में बैठा कर आ रही हूँ।

ताँगे वाला चलने की उतावली में था। पीछे से दूसरे ताँगे रिक्शे टैक्सियाँ वाले हाँक लगा रहे थे—चल चल रास्ता छोड अबे हट भी पे पे । इधर लाचार निस्सहाय सा कुछ बोल नही पा रहा था।

मुझे इस हालत में उदास परेशान देखकर दर्शना बहनजी ताँगे में थोडी एक तरफ खिसकते हुए बोली—आजा काके। छोटे भाई। बैठ जा। तुझे तो जाना नही था न वीर। भाई।

—नही' मेरी जबान जकड गई। मेरे इस अधूरे वाक्य के अनेक अर्थ

निकाले जा सकते थे—नही जाना था। ऐसी बात नहीं। नही 'मैं तो गुडगाँव से चलने के लिए पहले से ही तैयार हो कर गया था परन्तु। इस नही का अर्थ ताँगे वाले ने अपनी सुविधानुसार ही लगा लिया यानी कि 'नहीं बैठना। वह च च करते हुए घोडे की पीठ पर चाबुक का हल्का सा प्रहार कर बेंत को पहियों से टकराता करड करड' की ध्वनि निकालता भीड को चीरता हुआ ताँगे को कहाँ से कहाँ निकाल ले गया।

अब मैं और भी निढाल असहाय और मरा मरा सा खडा रह गया। उस बेशुमार भीड में बुरी तरह फँसा हुआ है अकेला अकेला जिसका अब कोई भी न रहा हो जैसे।

किसी तरह अपने आप को धकेलता हुआ मैं नज़दीक के एक बडे होटल में जा बैठा और थोडे वक्फे से चाय माँगता रहा।

कुसुम ने कुछ दिन पूर्व स्कूल से आकर एक सर्कुलर और लेटर दिखाया था। उसे सात रोज के एक सेमिनार में अहमदाबाद जाने का आदेश हुए थे।

इन कागजों को देखते ही मैं चिढ गया था—आए दिन यह क्या आफत आ जाती है तुम्हारे यहाँ। कभी खेल। तभी सेमिनार। कभी

कुसुम स्वय परेशान पर अपने को स्थिर रखते हुए बोली—अबकी तो जाना ही पडेगा।

—सिक कर दो। रोज रोज की बला। मैं आवेश से भर गया था।

—आखिर कहाँ तक? पहले भी दो तीन बार टाल चुकी हूँ। इससे ए॰सी॰ नाराज होंगे। कफिडेंशन रिपोर्ट पर भी असर पड सकता है।

तुमने कौन सी प्रमोशन लेनी है अब। मारो गोली

मैंने और जल भुनकर ऐसे आवाज निकाली जैसे इसी से सारा मामला रफा दफा हो जाएगा और आई हुई आफत टल जाएगी जी।

क्योंकि मैं घर से निकलना नही चाहता था।

दरअसल मैं बाहर रह रहकर तग आ चुका था। इन्ही दिनों दो रिश्तेदारों के यहाँ आवश्यक औपचारिकताएँ निभाने गया था। फिर लगातार दो विभागीय दौरों पर दस दस दिनों तक बाहर ही बाहर रहना पडा था। इन यात्राओं से नाक में दम आ गया था। अब निकट भविष्य में कही और जाने से मैंने दफ्तर में मना कर दिया था ताकि कुछ दिन घर में आराम से काट

सकूँ। मगर कुसुम अपने तर्क दिए चली जा रही थी।

—आप कुछ समझते तो हैं नही। हमारे यहाँ क्या कुछ होता है। वैसे वहाँ जाने से कुछ नया जानने सीखने को भी तो मिलता है। नए नए लोगों से मिलना जुलना और जान पहचान होती है। कुसुम मुझे किसी प्रकार से मनाना चाहती थी किन्तु मैं और भडक उठा था।

—हाँ हाँ तब तो जरूर हो आओ। नए नए आदमियों से मिलो। एक से तो ऊब होने लगती है ना।

—आप बिना सोचे समझे जो कुछ मुँह में आता है बोलते चले जाते हैं। कुसुम नाराज हो गई।

किन्तु कुछ देर बाद ही आग्रह करने लगी—ऐसा करें प्लीज। सबका ही पास बनवा लें। मैं अपना जनी फेयर चार्ज नही करूँगी। आप वहाँ बच्चों को घुमाते खिलाते रहना। और मैं मीटिंग अटेण्ड करती रहूँगी।

वही सुनाई दिया जिसकी मुझे शुरू से ही आशका थी। इसीलिए मैं बार बार सन्तुलन खो रहा था। सख्त लहजे में बोला—पास मैं सबका बनवा दूँगा। पर जाओगी तुम और बच्चे। मैं तो यही कुछ रोज चैन से रहूँगा।

—मेरे बिना दिल लग जाएगा? उसने किंचित शर्माने का अभिनय करते हुए मेरी ओर देखा एक क्षण भी तो अकले रह नही पाते। कुसुम कुसुम चिल्लाते रहते हो। कुसुम मेरी कमीज। मेरी बनियान। कुसुम पैन

मैं ऊँह कर के रह गया। कौन जवाब दे न फिजूल की बातों का। ठीक है सामने रहने पर मैं उस पर निर्भर रहता हूँ। बाद में घर पर रहूँगा ही कितना। डट्टी सिनेमा होटल दोस्तों से खुलकर गपशप। सात रोज की तफरीह। मजे ही मजे।

मेरे उपेक्षापूर्ण व्यवहार से वह स्तब्ध रह गई। रूठ सी गई।

हम दोनों के बीच तनाव खीज और खिन्नता भरती रही। मैं चाहता था। एक बार वह फ़िर से अनुनय करे तो मैं मान जाऊँ परन्तु उसने इस विषय पर बात न करने की ज़िद पकड ली थी।

उसके रोषपूर्ण चेहरे को देखकर मुझमें प्यार भी उमड आता। मानिनी रूप गर्विता मन ही मन कहता और हँसता। ऊपर से कठोर बना रहता। और हर चीज में लापरवाही बरतता।

एक बार उसने मुन्नू से कहलवाया—हम तीन अक्टूबर को जा रहे हैं। पास बनवा दीजिए। मम्मी ने दिल्ली चिट्ठी लिख दी है। दर्शना मौसी हमें गाडी में चढा देंगी।

रेलवे में हूँ। अत सबका पास बनवा लिया। अपना नाम भी जोड दिया। जो जाए। न जाए न जाए। फिर से गुस्सा भी आने लगा। आखिर इतनी शान किस बात की?

फिर सोचा। मेरी जिद ठीक नही। पर एकदम से मैं झुकना भी नही चाहता था। मैं पहले ही ड्यूटी के बहाने दिल्ली पहुँच जाऊँगा। अहमदाबाद वाली गाडी में उन सबसे छिपकर किसी और डिब्बे में बैठ जाऊँगा। और फिर किसी अगले स्टेशन पर मिलकर कुसुम को सरप्राइज दूँगा।

परन्तु अक्तूबर से गाडियों के टाइम बदल चुके थे। यही मेरी लापरवाही ने मुझे मात दे दी। मेरे प्लेटफार्म पर पहुँचने से कुछ ही समय पहले गाडी रवाना हो चुकी था।

मैंने चाय का आधा प्याला बीच में छोड दिया। वही उसी होटल से दर्शना बहनजी के घर फोन किया।

उधर से आवाज आ रही थी—काक तेरे हाथ में मैंने अटैची तो देखी था। किसकी था। तेरा या उनका। उनका कोई जरूरी सामान तो नही रह गया।

—सब कुछ"'रह गया बहनजी। क्या करूँ। कैसे करेगी कुसुम' मैं ऐसे ही कुछ बोले जा रहा था।

—लगता है तू रह गया। मुझसे कुसुम भी यही कह रही थी—उनकी मजाक करने की आदत है। देखना ऐन आखिरी वक्त पर आ पहुँचेंगे। मुय अकेली को इन छोटे छोटे बच्चों के साथ कैसे जाने दे सकते हैं। भला ।

मैंने उन्हें बीच में ही टोका—आपको उनके ठहरने का सब कुछ पता ठिकाना मालूम है?

—मुये क्या पता। यह तो तुये होना चाहिए। पर तू उदास क्यों है। कहाँ पीछा करता फिरेगा अब। निकाल लेगी सात दिन पढी लिखी समयदार है। कितनी तो सर्विस रह गई उसकी। तू फिक्र मत कर।

—हाँ "शायद ठीक कहती हैं आप' कहते कहते मेरा गला भारी पड

गया। पता ठिकाना याद कैसे रहता। कुसुम क हाथ से सर्कुलर लेकर मैं जल भुन गया था। देखने पढने की बजाए उसे दूर पटक दिया था। अब वापस गुडगाँव जाकर उसके ऑफिस से पता लगाना बडी विचित्र सशययुक्त तथा विरूप स्थिति होगी। साथ ही लम्बा समय लग जाएगा, इस तरह

मुझे चुप पाकर दर्शना बहनजी कह रही थीं—तू इधर ही क्यों नहीं आ जाता।

—नहीं पता नहीं क्यों मैं चीख सा पडा। फोन रख दिया।

दर्शना बहनजी के अनुसार सात रोज़ निकलते देर न लगेगी। निकाल ही लेंगे वे लोग सात दिन उधर किसी तरह। परन्तु कैसे समझाऊँ दर्शना बहनजी को इधर के सात दिनों के बारे में, जिनको भार मुझे यहाँ अकेले सहनी होगी।

फिर से चाय मँगाई।

उधर वह क्या और कैसे करेगी। स्वय तो होस्टल में रुक सकती है लेकिन बच्चों को कहा ठहराएगी। धर्मशाला वाले तो तीन रोज़ से ज्यादा ठहरने नही देते। फिर देखो नई जगह। होटल न जाने कैसे कैसे। अकेले बच्चों के लिए सुरक्षित भी होंगे या नही। छोटा मुन्नू तो बिना मम्मी डैडी के तो रो रोकर नाक में दम कर देगा। अपनी दीदी से कहाँ सँभलता है। ओह कैसे मैंने उन्हें अनदेखे भीड भरे सागर में बहने को छोड दिया है।

दुस्वप्न है कि पीछा नही छोडता। बार बार एक सी बातों में उलझ उलझ कर झटके खा रहा हूँ।

हाँ अब कि एक नया विचार कौंधा है। फिर से अधूरा कप छोड फोन तक जाता हूँ—बहनजी मेरे लिए पैसों की व्यवस्था करें और क्या अहमदाबाद की फ्लाइट का कुछ पता लग सकता है?

—हाँ हाँ एक मिनट। थोडा मौन। हाँ, मेरा देवर वही तो काम करता है। सब कर देगा तुम्हारे लिए। गाडी से बहुत पहले ही पहुँच जाओगे। ठीक सोचा। बहुत ठीक।

अब तुम सीधे इधर चले आओ।

हाँ जी अभी। • •

गोल लिफाफे

"नैवर 'यह तो मैं नहा बताऊँगा।"

देखिए मधुर साहब हम आपके सभी उत्तरों से सन्तुष्ट हैं। आप एक स्मार्ट युवक हैं। यदि आप यह स्पष्ट नही करेंगे कि 'बिन्दिया' को चमकाने में आप कौन सी नीति अपनाएँगे तो हमें खेद है कि' अध्यक्ष महोदय ने वाक्य के बीच में छोड़कर मधुर की तरफ सहानुभूति से देखा।

मधुर ने तमाम मेम्बरों पर रौब की नजर डाली। फिर अलसाई सी आवाज में बोला— आप मुझे मेरे अनस्लेक्टेड रह जाने का भय दिखाकर मुझसे मेरे अमूल्य अन्वेषणों की सूची नही ले सकते क्योंकि मैं तो अपने को प्रमाणित करने के लिए घिसे हुए जूते पेश कर सकने की स्थिति तक पहुँच चुका हूँ। उसने चप्पल की तरफ हाथ बढाया।

आप अपनी बात कीजिए' एक मैम्बर ने बहुत रूखी आवाज से कहा वातावरण का खुष्क करने की कोशिश की।

श्रीमान। मधुर ने अध्यक्ष की और देखते हुए कहा मैं मात्र इतना ही दिखाना चाहता था कि मैं निहायत जेन्युइन आदमी हूँ। जमाने भर की ठोकरों को चिपटा कर चलते चलते अपने ढग से चलने में माहिर हो चुका हूँ। यह मात्र इस बलबूते पर की मेरे पास मेरे खुद की मौलिक योजनाएँ हैं। विचार हैं। इस सबसे ऊपर अकेले चल निकलने का अदम्य साहस का विश्वास।

"अदम्य साहस का विश्वास? एक मेम्बर ने टोका।"

"आल राइट आलराइट, अध्यक्ष साहब ने जल्दी से पूछा, कि मधुर तो फिर आप अपनी मौलिक योजनाएं बताने में इतनी हेरा फेरी का इस्तेमाल क्यों कर रहे हैं।

"इसीलिए कि चारों तरफ लूट खसोट का सराउडिंग मुँह फैलाए खडा है मेरा ख्याल है कि मुझे अधिक कहने को जरूरत नही।

वेल हम समझ गए। अब आप जाने की कृपा कर सकते हैं।

बिना अभिवादन किए मधुर कमरे से बाहर चला गया।

"बेचारा है सच्चा अध्यक्ष महोदय ने कमेटी के सदस्यों पर नजर फेंकते हुए कहा" हमारे सामने आज कोई भी ऐसा आदमी जन्म नहीं ले रहा जिस पर विश्वास जैसी कीमती हीरा निछावर किया जा सके।"

इस वाक्य को सुनकर सब सदस्यों की अकडी हुई गरदनें झुलस सी गईं क्योंकि प्राय सभी के जेब से चार चार सिफारिशों की लिस्ट झाँक रही थी।

सभी जानते थे कि अध्यक्ष का रुझान नई पीढी के तरफ रहता है। उनकी उम्र पचास को फाँदने वाली थी। परन्तु उनके उद्देश्य विचार चिन्तन यहाँ तक कि आचरण भी नई पीढी के इतने आमने सामने पडते थे कि जरा सा घूमकर जवानी एव आधुनिकता से टक्कर लेते थे। इसलिए अपने हम उम्रों से उनकी पटती नही थी—परन्तु वे सदस्य भी तो युवा वर्ग की अप्रोच लेकर आये थे।

अध्यक्ष महोदय शिक्षा विभाग में नए आये थे। ऊँचे पद पर थे। एकदम इन्साफ पसन्द। जब कभी बिन्दिया कमजोर पडती, वे उसके इलाज पर जहाँ तक बन पडता खर्चा भी करते थे। इस कारण भी उनका बडा रौब था। किसी की नाराजगी की परवाह करने की उन्हें फुर्सत नही रहती थी।

उन्होंने बस सम्पादक साहब को विश्वास में जरूर लिया—क्यों मधुर डिजरविंग कैंटीडेट है ना आप यह तो नही सोचते कि आप उससे काम नही ले पाएँगे?

नही साहब बिल्कुल नही। ऐसे जीनियस को मुझे कुछ कहने की जरूरत ही नही पडेगी।

तब ठीक है दोनों मुस्कराए।

सम्पादक जी ने मधुर की टेबिल अपनी मेज के सामने लगवाई। केबिन सजा हुआ था। टेलीफोन चपडासी को बुलाने की घंटी और एक इजी चेयर देखकर मधुरजी भडक उठे मैं यहाँ हरगिज नहीं बैठ सकता। मैं आपसे कोसों

दूर बैठना पसन्द करूँगा। मैं अरेस्टीक्रेटीक लाइफ को जडों से खोदने के लिए यहाँ आया हूँ। मैं तो अपना काम बाहर चपडासी के साथ बेंच पर बैठकर भी चला सकता हूँ।

सम्पादक घबरा गये ऐज यू प्लीज, ऐज यू प्लीज, दो दफा दोहराया। फिर कमरे के परले सिरे पर उसकी टेबिल लगवा दी।

मधुरजी थोडी थोडी देर बाद, आधा आधा कप चाय मँगवाते रहे थोडा थोडा चाय टेबिल क्लाथ को भी पिलाना नहीं भुलते। दो तीन दिनों में ही बहुत सी मक्खियाँ उनकी अगरक्षक बन गईं—किसी को उनके नजदीक आने का साहस नही पडता था।

जब भी सम्पादक साहब मधुरजी से बात करने की जरूरत समझते, पहले चाय मँगवाते ताकि बातचीत हैल्थी एटमास्फियर में हो सके।

एक दिन ये बोले "मधुरजी बडे आश्चर्य की बात है जब से आप यहाँ आये हैं हमारे यहाँ बहुत सी रचनाएँ आने लगी हैं वे भी गोल लिफाफों में

"और जिनके पास गोल लिफाफे नही होते होंगे वे टेंडरस पर दायर खीचते होंगे। दरअसल गोल बडे आदमियों की शून्य बुद्धि का प्रतीक है। अच्छा मधुरजी थोडे बिगडे लहजे में बोले "कायदे से सारी रचनाएँ पहले असिसटेन्ट के पास आनी चाहिए। आपको इतना कष्ट नही उठाना चाहिए।"

सो तो ठीक है। मैं परन्तु अपने को बडा नही समझता। रचना देखना और साहित्य अध्ययन तो हमारी बेसिक जॉब है और रुचि भी। इसमें कष्ट कैसा।"

फिर भी—मैटर तो बहुत आता होगा।"

हाँ, आजकल ज्यादातर लोग कूडा करकट भेजने लगे हैं जिन्हें पूरा पढ कर हर सम्पादक के लिए एक कष्टदायक प्रक्रिया से गुजरने के बराबर होता है।

मसलन'

इधर देखिए यह गोल लिफाफे में बेइन्साफी भेडिये शीर्षक की कहानी मैं इसे ही देख रहा था, उन्होंने मेज पर पहले से खुली पडी कहानी की ओर इगित किया और एक अश पढने लगे—मुर्दा परस्तों के बाजारों की कतारों में से बल्बों की सुगन्धों को फाँकते हुए, लोग चहल पहल और चुहलबाजी की

शर्तें लगाते हुए भाग रह थे।

"वाह, वाह क्या भाषा और शिल्प का अनूठा प्रयोग कसा है।

सम्पादक साहब आपके लिए यही बेहतर होगा कि आप बिना पढे ही गोल लिफ़ाफ़ों में आई रचनाओं को छपाने के लिए भिजवा दें।

सम्पादकजी थोडे लज्जित स्वर में बोले अच्छा मतलब तो बताइए।

इस कहानी में युवा पीढी का सच्चा प्रतिनिधित्व साफ सुथरा होकर निखर आया है। क्या आप इस कहानी को वापिस लौटा रहे थे?

"आप एक्सप्लेन तो कीजिए" बडी अधिरता से सम्पादकजी ने कहानी की तरफ देखते हुए कहा।

"बहुत स्पष्ट है—यानी आज का व्यक्ति समझ लीजिए आज आदमी यानी कि एक नागिरक कितने यातना पूर्ण वातावरण में से भी बल्ब जैसी खुश्क और गर्म चीज से सुगध हासिल करने का कायल है। और वह आम आदमी के दर्द से भागता है तो भी हँसते मुस्कराते हुए।

सम्पादक साहब ने अपनी पुरानी बुद्धि को कोसा और कहा—अच्छा अभी आजमाइश के तौर पर गोल लिफ़ाफ़ों में आयी केवल इसी रचना को लीजिए आपके सामने अगल अक में छापने के लिए रिमार्क लिख देता हूँ।

विश यू प्रोग्रेसिव लक कहकर मधुरजी वहाँ से उठ आये। अपनी टेबिल पर पहुँचते ही उन्होंने बेइन्साफी भेडिये के लेखक को स्वीकृत की सूचना में अनौपचारिक पत्र लिखा। इसके साथ और कई मित्रों को भी।

अक आउट होने के तीसरे दिन से ही बेइन्साफी भेडिये पर धडाधड प्रतिक्रियाएँ आने लगीं। ज्यादातर स्पोर्ट में थी और ज्यादातर गोल लिफाफों में।

महीने डेढ महीने में मधुरजी को स्वय की कई रचनाएँ भी बाहर की पत्रिकाओं में स्वीकृत हो कर छपने लगी।

इससे अगले अक में बिन्दिया में तीन गोल लिफाफों वाली रचनाएँ छपी। साथ में मधुरजी से परामर्श कर सम्पादकीय में बिन्दिया में एक जबरदस्त क्रान्ति लाने का दावा भी ठोका गया—हम साहित्य में क्रान्ति ला रहे हैं ऐसा कहकर हम अहमवादी कीचड में फँसना नहा चाहते। वास्तव में क्रान्ति भूखे आदमी की अन्तडियों से फूट फूटकर बाहर निकलती है लावे की

तरह पुरान मूल्यों को भस्मीभूत कर देती है। हम तो साहित्य के माध्यम से उसे उजागर करने में योगदान दे रहे हैं। साहित्य से कूदकर यह क्रान्ति राजनीतिक कुरातियों को जा दबोचेगा। सारी व्यवस्था सुव्यवस्था में आपसे आप जा पलटेगी। प्रतीक्षा करना मनुष्य का धर्म है।

अबकी उसी अनुपात में प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुईं साथ में सम्पादकीय की भी भूरि भूरि प्रशसा की गई।

एक दिन, अध्यक्ष महोदय ने बिन्दिया कार्यालय का सरप्राइज़ विज़िट किया। स्टाफ पर सरसरी नजर डालते हुए केबिन में जा पहुँचे— कहिए। सम्पादकजी को सम्बोधित करते हुए पूछा, "बिन्दिया कैसी चल रही है। मधुरजी कैसे चल रहे हैं।"

आपकी ओर उनकी कृपा से बिन्दिया बहुत पापुलर हो रही है।" उन्होंने अध्यक्ष का ध्यान शैल्फ की तरफ खीचा—"पहले हमें इतनी प्रतिक्रियाएँ कभी प्राप्त नही हुई थी। कई नए ग्राहकों के चेक और मनीआर्डर्ज़ आ रहे हैं इन दिनों।"

"मतलब मधुरजी मेहनत से काम कर रहे हैं।"

"आफकोर्स इसके लिए आप उन्हें बधाई दे सकते हैं।"

अध्यक्ष महोदय ने मधुरजी को बुलवाया उनकी पीठ ठोकी और कहा आप दोनों शाम को हमारे बँगले पर पधारिए। नव लैलन पर एक गोष्ठी हो जाए। हमने भी एक कहानी लिखी है। उसके शीर्षक के विषय में आप लोग सलाह दीजिए।

"क्या आप लोग रतनन् जी से परिचित हैं। हमेशा ए वन शीर्षक होते हैं उनकी कहानियों के। हिन्दी वालों का यही दुर्भाग्य है कि उन्हें जानते तक नही। शायद "अध्यक्ष साहब की ओर एकदम मुडकर उन्होंने कहा, "उडती चिडिया की रुकता साँस पढी हो।

"अच्छा तो रतनन् जी की लिखी हुई है। क्या लाजवाब चीज है।" अध्यक्षजी ने कहा।

"उडती हुई चिडिया की रुकती साँस" सम्पादक जी ने बुदबुदाते हुए दोहराया उन्हें ध्यान आया इस शीर्षक की रचना को वह दो तीन बार लौटा

चुके हैं। आखिर छप ही गई किसी नव लेखन की पत्रिका में। तो फिर दोष उनकी ठहरी हुई बुद्धि का है।

"अच्छा तो आप शाम को रतनन जी को भी ले आएँ।" अध्यक्षजी ने कहा।

"कुछ और साहित्यकारों को भी बुला लिया जाए तो कैसा रहे। परिचय भी हो जाएगा। और रास्ते भी ओपन हो जाएँगे। मधुरजी ने सलाह दी।"

"जरूर जरूर बेशक बेशक बहुत बढिया रहेगा।" हाथ मिलने के बाद अध्यक्ष महोदय चले गए।

शाम को सोलह जने अध्यक्षजी के बँगले पर साहित्यिक वातावरण में मिले। सबसे बारी बारी अध्यक्ष महोदय का परिचय कराया गया। हाथ मिलाने से पूर्व अध्यक्षजी दूसरे हाथ से चाय का प्याला ले लेते जो हाथ छोडते ही नव परिचित को शील्ड की तरह थमा देते।

"अपने ही शहर में इतनी सारी महान् प्रतिभाएँ हैं यह जान कर बडी खुशी हुई है हमें।"

"मगर इतनी घनी आबादी वाली सी क्लास सिटी में लोग इनमें से किसी एक को भी इनके सही परिप्रेक्ष्य में नही जानते। क्या इस बात को लेकर कोई आदोलन नही किया जा सकता ? सबको लानत नही देनी चाहिए क्या ? एक ठिगने नव युवक का पतला स्वर फूटा। क्यों साहब। ऐसा कोई प्रस्ताव पारित कर दिया जाए इसी वक्त ?"

यह बुराई ऊबड खाबड व्यवस्था के कारण हैं क्यों रतनन् जी जहाँ तक मेरा अपना अदाजा है आपने उडती चिडिया की रुकती साँस में यही थोपने की कोशिश की है।" मधुर ने पूछा।

जी हाँ उप सम्पादक महोदय। दो बातें हैं। आज की व्यवस्था ग्रामो रिकार्ड है। जो आदमी के भौंकने की परवाह किए बिना निरन्तर अपनी डफली पीटती रहती है। दूसरा या फिर यूँ भी कहा जा सकता है कि व्यवस्था के कई एक किस्म के ग्रामोफोनी रिकार्ड मौजूद हैं। जब जिस अवसर पर जिस आदमी नेता से जो कुछ उगलवाना चाहती है वही रिकार्ड ग्रामोफोनी चाबी भर कर उसके गले में फिट कर देती है। वह आदमी या नेता जो कुछ भी कहता है यदि

इसकी आवाज को हम उसी की आवाज मानते हैं तो भ्रान्त होते हैं—वास्तव में न तो यह उसकी आवाज ही होती है और न ही इसके लिए कतई जिम्मेदार होता है।" रतन ने गम्भीरता पूर्वक एक ही साँस में भाषण खत्म किया। दृष्टि को जमीन पर गडा दिया। दोनों कानों को खड़ा रखा।

"वाह, वाह, आइडिया आइडिया अध्यक्ष साहब ने अकेले नारा लगाया बस बस यही लगभग ऐसा ही प्लाट नही एक थीम एक मुद्दत से मेरी नसों को कुरेदती रही है। इसी थाट को डैवलप करने के चक्कर में मैं दिन में सो नही सका।"

हो जाए फिर" कई स्वरों की सामूहिक डिमाड पर अध्यक्ष साहब ने कहानी सुनानी शुरू कर दी।

कहानी की समाप्ति पर माहौल चरम सीमा तक जोशोखरोश के साथ गर्मा गया।

"अहा अहा" वन्य मार सर।" ओह, वडरफुल शिल्पी।" कहकर लोग चाय भी चढा रहे थे।

आकर बात अटकी शीर्षक पर। सबने शीर्षक सुझाए। किन्तु रतनन् मौन धारणा किए रहा—एक वजनी चिन्तक की तरह सबकी बातें और हल्के, ठलझे हुए विरोधाभासी तर्कों का सुनकर मन ही मन कच्ची बुद्धिया पर तरस खाता रहा।

अन्त में मधुर तथा अध्यक्षजी के कहने पर बात उसी के अमूल्य निर्णय पर अटका दी गई।

रतनन् ने बडी सजीदगी से अपने अलसाए शरीर को थोडा आगे पाछे खिसकाया गोल सा चक्कर भी दिया। वातावरण की जडता को तोडा "कुलियों के सौदागर।"

एक मिनट के लिए उसने सबको खुलकर चौंकने का मौका अता फरमाया। गले में से जैसे बेशकीमती 'बोल' निकालने की तैयारी में खरखराया। पूरे आत्मविश्वास से खूँ खूँऽ अब आप पूछेंगे—क्यों? यही ना! देखिए मैं बिना ठोस सत्य के अपने गले में से कोई फिजूल बात निकालने की कोशिश हरगिज नही करता।"

"हमें यकीन है। एक साथी की आवाज को नजरअदाज करते हुए

रतनन् ने बात आगे बढाई।

"क्योंकि यह कहानी मजदूर वर्ग के शोषण की कहानी है—क्योंकि अध्यक्ष साहब यहीं बात सटीक ढग से क्या की गई है ना।"

"हाँ हाँ यही यों कहना अधिक अच्छा लगेगा अरे, सोनहर भई। अब की काफी (कडक काफी) बनाना और देखो मक्खन की सारी टिकियाँ इधर रख जाओ नौकर को आवाज देने के बाद उन्होंने चर्चा आगे बढाई "कितने आराम से चुपचाप बैठे बैठे बेइमान लोग ब्लाटिंग की तरह मजदूरों का खून सोखते रहते हैं"

"हूँ—अच्छा अगर आप यह ब्यान करते हैं तो थोडा ठहरिए।" रतनन् एक मिनट तक सोचता रहा। फिर चुटकी बजाते हुए बोला "तो फिर आप अपनी कहानी का शीर्षक हरामखोरी का दडबा रख दीजिए। इस मुफ्त के डकार मारने वालों की ओर इगित करता है।"

"परन्तु क्या इससे पाठक वर्ग का ध्यान धनाढयों से हटकर मजदूर वर्ग की तरफ चले जाने का डर नही सम्पादक साहब ने शका प्रकट की क्योंकि कथानक में खासी फ्लैक्सेबिलिटी लगती है।"

"वो तो होनी ही चाहिए। कॉफी की सतह पर मक्खन चुपडते हुए स्वर्ण जो बिन्दिया के दफ्तर में चपरासी से लेकर क्लर्की तक का उम्मीदवार था बोला "साहित्य को अत्यन्त मधुर होना चाहिए। जिससे इसका रस विश्व के सब वर्गों के लोग एक स्तर पर यानी बराबरी के स्तर पर उठा सकें। इससे किसी वर्ग विशेष को चोट नही पहुँचनी चाहिए। मसलन इसी कहानी को मैं इसके नए शीर्षक सहित उदाहरण के रूप में पेश करना अपना सौभाग्य समझूँगा। एक सेकड वह रुका और गर्दन को रिवाल्विंग फोन की तरह घुमाते हुए बोला "इस पढकर मजदूर सेठों पर प्रहार समझ सकते हैं और सेठ मजदूरों को कामचोर समझ कर सतोष हासिल करेगा। यह हुई ना वास्तविक क्लाकृति।"

"स्वर्णाजी न तो आपने और न रतनन्जी ने ही मेरी कहानी का शीर्षक बताया। कहा था सोचकर बताएँगे।" भोला अटलांटिक ने समय से फायदा उठाने की गरज से कहा।

हम दोनों ने आपकी कहानी पर बहुत डिसकस किया था अटलांटिक

जी। और हम दोनों न उसका शीर्षक 'बहन की गली' रखने का निर्णय लिया है।" स्वर्णा ने बात खत्म की।

सभी साहित्यकार बात की अगली कडी की प्रतीक्षा करने लगे।

तब रतनन् बोला "इन्होंने भी अपनी कहानी में एक मेहनतखोर मजदूर को खडा किया है। अमीरों के लिए लाख शुगल मगर मजदूर के लिए बस छोटे मोटे 'दाँव' या 'छतें'। सो उस मजदूर भाई के सारे पैसे चुक चुके हैं। उधर आला दर्जे के यार दोस्त उससे पार्टी माँग रहे हैं। वह बेचारा किसी तरह एक बडे होटल में बैरे के द्वारा वहाँ से रोटियाँ पार कराता है। अपनी बहन के घर (जो नजदीक होता है) भिजवाता है। वहीं भोज आयोज्य है।

बस यहा अपने चरम बिन्दु पर आकर कहानी समाप्त हो जाती है।

वाह वाह वह साहब मजबूरी की ऐसी मार्मिक गाथा, क्या कहने कभी हमें भी सुनाइए न। सारी मडली के लेखकों ने भोला अटलांटिक की तरफ देखा।

"ऐसी बढिया चीज को हम अभी यहीं स्वीकृत किए लेते हैं।" मधुरजी ने घोषणा की। 'बिन्दिया' के अगले अक में आप 'बहन की गली' सारी गली पढेंगे। और अन्य किसी विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका में 'हरामखोरों का दडबा' पढेंगे।

'बिन्दिया' के सम्पादक ने दूसरे दिन कण्डीशनल रेजिग्नेशन लिखकर अध्यक्षजी को भिजवा दिया जिसे अध्यक्ष महोदय ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। सम्पादकजी ने लिखा था। वह पत्रिका की दुर्गति को सहन नहीं कर सकते। साहित्य में जो आपा धापी मच रही है वह कम से कम उनके रहते हुए 'बिन्दिया' के माध्यम से नहीं होगी। मधुरजी लिखित में माफी माँगे नहीं तो'

"मधुरजी ने एक रचना स्वीकार क्या कर ली, इन्होंने ईर्ष्या वश त्याग पत्र दे मारा अध्यक्षजी ने सदस्यों को समझाया और नई व्यवस्था में सम्पादक मधुर तथा उप सपादक स्वर्ण को रखवाया।

दो चार महीनों में ही। चाहे अनचाहे देश भर की कई पत्रिकाओं में 'बहन की गली' तथा 'हरामखोरों का दडबा' की खूब चर्चा की। विशुद्ध साहित्यिक कहलाने वाली पत्रिकाओं ने तो इन पर पेज के पेज रँगने में होड ले ली।

अध्यक्ष साहब की तथा मधुर आदि की कई कहानियाँ धडाधड छपने लगी थी। वे कोई भी कहानी बिन्दियाँ में नही छपवाते थे। ताकि किसी को कहानी की प्रमाणिकता पर सन्देह करने की गुजाइश न रहे। अब तो मधुरजी को खुली छूट थी। लम्बे लिफाफों में आने वाली रचनाओं के लेखकों को रूढिग्रस्त सस्कारवादी बुर्जआ करार देकर,उनकी रचनाओं को न तो छापते न ही लौटाते।

साहित्यिक पत्रिकाओं में इतना नाम कमा लेने के बावजूद बिन्दिया को इन दिनों एक बहुत बडे आर्थिक सकट का सामना करना पड रहा था। लगभग सभी पहले ग्राहक चन्दा रिन्यु कराने के नोटिस पर ध्यान नहीं दे रहे थे। नए ग्राहक जो बने थे वे सख्या में बहुत ही कम पडते थे।

लाचार होकर कमेटी को पत्रिका की कीमत बढानी पडी थी और पेज घटाने पडे थे।

इस सबके बावजूद हालत सँभलने में नही आ रही थी फिर एक दिन तग आकर कमेटी ने एक ज्ञापन सरकार को भी दिया कि विशुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं को प्रोत्साहन देने के लिए तथा देश के अनपढ लोगों का मानसिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए सरकार को व्यवसायिक पत्रिकाओं तथा अश्लील साहित्य पर बैन लगाना चाहिए।

ग्राहकों की तरह सरकार ने भी कमेटी के ज्ञापन पर नोटिस नहीं लिया।

इससे चिढकर अध्यक्ष महोदय ने पत्रिका को बद करने का प्रस्ताव रखा—अगर साहित्यिक पत्रिकाओं की यह नियति है तो इसमें हम क्या कर सकते हैं।

शोक सभा हुई। दो मिनट के मौन के बाद प्रस्ताव पारित हो गया।

कुछ दिनों बाद बिन्दिया के दफ्तर में बहुत सी रग बिरगी पतगें लटक रही थी। आस पास मँझा सूता जा रहा था। मधुर तथा स्वर्णाजी भी वहाँ खडे दिखाई दे रहे थे।

पता नही नई व्यवस्था में थे या महज़ कुछ खरीदो फरोख्त करने आए थे। • •

□□□



हरदर्शन सहगल

जन्म 1935 कुरियाँ जिला मियाँवाली (अब पाकिस्तान में)

कार्यक्षेत्र रेलवे विभाग से सेवानिवृति पश्चात स्वतंत्र लेखन

प्रकाशन मौसम (कहानी संग्रह 1990)

टेढ़े मुँह वाला दिन (कहानी संग्रह 1992)

मर्माहित (कहानी संग्रह 1990)

सफ़ेद पंखों की उड़ान (उपन्यास 1994)

सही रास्ते की तलाश (बाल कथा संकलन 1990)

अपने अपने काम (बाल कथा संकलन 1995)

नाम कमाने की ललक (बालकथा संकलन 1991)

[illegible] का [illegible] (बालकथा संकलन 1991)

सम्पादन [illegible] (शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए उर्दू साहित्य 1993)

पुरस्कार/सम्मान राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा रांगेय राघव पुरस्कार (उपन्यास सफ़ेद पंखों की उड़ान) अपने अपने काम पर [illegible] [illegible] पुरस्कार।

[illegible] [illegible] पुरस्कार कुछ और भी।

पता 5/9 [illegible] [illegible]
[illegible] (राजस्थान) 334001